॥ श्रीहरिः ॥

187

प्रेमी भक्त उद्धव

'आदर्श चरितमाला' तृतीय पुष्प

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

प्रेमी भक्त उद्धव

'आदर्श चरितमाला' तृतीय पुष्प

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

लेखक—पं० श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदी

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

निवेदन

भक्तके हृदयमें भगवान् बसते हैं, भगवान्के हृदयमें भक्त। यह एक ऐसा योग है जिसमें वियोग होता ही नहीं, जिसमें भक्त और भगवान्का एकान्त मिलन निरन्तर होता ही रहता है। उद्धव ऐसे ही प्रेमी भक्त हैं और स्वयं भगवान्ने उन्हें 'प्रियतम' कहकर सम्बोधित किया है।

उन्हीं महाभागवत परम प्रेमी उद्धवका चरित्र आपके हाथोंमें है। आपके सुपरिचित लेखक पण्डित श्रीशान्तनुविहारीजी द्विवेदीने पूर्ण प्रीतिके साथ इसका प्रणयन किया है। आधार तो मुख्यतः श्रीमद्भागवत तथा गर्गसंहिताका है ही परन्तु उन्होंने अपनी सुन्दर एवं भावपूर्ण शैलीमें चरित्रका जो विन्यास किया है वह पाठकोंको विशेष प्रीतिकर होगा ऐसा मेरा विश्वास है। पुस्तकके अन्तिम भागमें उद्धवके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके उपदेश संकलित हैं जिसके कारण पुस्तककी उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। आशा है यह पुस्तक पाठकोंको भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें सहायक सिद्ध होगी।

विनीत

सम्पादक

॥ श्रीहरिः शरणम् ॥

प्रेमी भक्त उद्धव

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥

(भगवान् श्रीकृष्ण)

'हे उद्धव! शंकर, ब्रह्मा, बलराम, लक्ष्मी और स्वयं अपना आत्मा भी मुझे उतना प्रिय नहीं है, जितने प्रियतम तुम हो।'

भगवान् श्रीकृष्णमें परमप्रेमका होना ही भक्ति है। यों तो भक्तिके अवान्तर भेद बहुत-से हैं, परंतु साधारणतः भक्तिके दो भेद हैं—एक साधनभक्ति और दूसरी साध्यभक्ति। साधनभक्तिके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होता है, उसके शुद्ध होनेपर आत्मतत्त्वका, भगवत्-तत्त्वका बोध होता है और उसके बाद पराभक्ति अथवा साध्यभक्तिकी प्राप्ति होती है। पराभक्तिसे रहित जो ज्ञान है, वह परमज्ञान नहीं है, केवल साधन-ज्ञान है, परोक्षज्ञान है। पराभक्ति और परमज्ञान एक ही वस्तु हैं, इनमें तनिक भी भेद नहीं है। परमज्ञान अथवा परमभक्तिका प्राप्त होना ही जीवनकी सफलता है। जबतक यह प्राप्त नहीं होती तबतक जीव भटकता रहता है। ये किस प्रकार प्राप्त होते हैं, इस प्रश्नका उत्तर उद्धवका जीवन है। उनके जीवनमें क्रमशः साधनभक्ति, साधनज्ञान, पराभक्ति और परमज्ञानका उदय हुआ है। वे भगवान्के प्रेमी भक्त हैं, उनके तत्त्वके परमज्ञानी हैं, उनके पार्षद हैं और उनके स्वरूप ही हैं।

मथुराके यदुवंशियोंमें वसुदेवके सगे भाई देवभाग बहुत ही प्रसिद्ध थे। वे भगवान्के भक्त थे, देवता और ब्राह्मणोंके उपासक थे, संतोंपर उनकी अपार श्रद्धा थी और उनकी धर्मपत्नी भी उन्हींके अनुकूल आचरण करनेवाली सती साध्वी थीं। जिन दिनों भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें अवतीर्ण हुए, उन्हीं दिनों इन दम्पतिके गर्भसे उद्धवका जन्म हुआ। उद्धव भगवान्के नित्य पार्षद हैं। जब भगवान् मथुरामें आये तब वे कैसे न आते? वे आये और जबतक रहे, भगवान्की सेवामें लगे रहे। उनके मनमें दूसरी कोई इच्छा ही नहीं थी, यन्त्रकी भाँति भगवान्की इच्छाका पालन करते थे।

बचपनमें ही ये भगवान्के परमभक्त थे। खेलमें भी भगवान्के ही खेल खेलते। किसी पेड़के नीचे भगवान्की मिट्टीकी मूर्ति बना लेते। यमुनामें स्नान कर आते। लताओंसे सुन्दर-सुन्दर फूल तोड़ लाते। फलोंसे भगवान्को भोग लगाते और उनकी पूजामें इतने तल्लीन हो जाते कि शरीरकी सुधि नहीं रहती। कभी उनके नामोंका कीर्तन करते, कभी उनके गुणोंका गायन करते और कभी उनकी लीलाओंके चिन्तनमें मस्त हो जाते। सारा दिन बीत जाता, उन्हें भोजनकी याद भी नहीं आती। माता बुलाने जातीं—'बेटा! देर हो रही है, चलो कलेवा कर लो। भोजन ठंडा हो रहा है, दिन बीत गया, क्या तुम मेरी बात ही नहीं सुनते। आओ लल्ला! मैं तुम्हें अपनी गोदमें उठाकर ले चलूँ, अपने हाथोंसे खिलाऊँ।' परंतु उद्धव सुनते ही नहीं, भगवान्की पूजामें तन्मय रहते। कभी सुनते भी तो तोतली जबानसे कह देते—'माँ! अभी तो मेरी पूजा ही पूरी नहीं हुई है, मेरे भगवान्ने अभी खाया ही नहीं, मैं कैसे चलूँ? मैं कैसे खाऊँ?'* पाँच बरसकी अवस्थामें उद्धवकी यह भक्ति-निष्ठा देखकर माता चकित रह जाती। पूजा पूरी हो जानेपर प्रेमसे गोदमें उठा ले जाती और खिलाती-पिलाती।

क्रमशः उद्धव आठ बरसके हुए। यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। विद्याध्ययन करनेके लिये गुरुकुलमें गये। साधारण गुरुकुलमें नहीं, देवताओंके गुरुकुलमें, देवताओंके पुरोहित आचार्य बृहस्पतिके पास। सम्पूर्ण विद्याओंका रहस्य प्राप्त करते इन्हें विलम्ब नहीं हुआ। सम्पूर्ण विद्याओंका रहस्य है—भगवान्से प्रेम। वह इन्हें प्राप्त था ही। अब उसको समझनेमें क्या विलम्ब होता! वास्तवमें जिनकी बुद्धि शुद्ध है; जपसे, तपसे, भजनसे जिन्होंने अपने मस्तिष्कको साफ कर लिया है, सभी बातें उनकी समझमें शीघ्र ही आ जाती हैं। यह देखा गया है कि संध्या न करनेवालोंकी अपेक्षा संध्या करनेवाले विद्यार्थी अधिक समझदार होते हैं। भगवान् सविता उनकी बुद्धि शुद्ध कर देते हैं। उद्धवमें भगवान्की भक्ति थी, साधना थी, वे बृहस्पतिसे बुद्धिसम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञातव्योंका ज्ञान प्राप्त करके उनकी अनुमतिसे मथुरा लौट आये।

---

* यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया॥

मथुरामें उनका बड़ा ही सम्मान था। सब लोग उनके ज्ञानके, उनकी नीतिके और उनकी मन्त्रणाके कायल थे। यदुवंशियोंमें जब कोई काम करनेमें मतभेद होता, कोई उलझन सामने आ जाती, उनसे कोई समस्या हल न होती तो वे उद्धवके पास जाते और उद्धव बड़ी ही योग्यताके साथ सब उलझनोंको सुलझा देते, सारी समस्याको हल कर देते। सब उनकी बुद्धिपर, उनके शास्त्रज्ञानपर लट्टू थे। उनका पूरा विश्वास करते थे और वे भी सबकी सेवा करते हुए, सबका हित करते हुए कंसकी दुर्नीतियोंसे लोगोंको बचाते हुए भगवान्के भजनमें तल्लीन रहते थे।

भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावनसे मथुरा आये, कंसका उद्धार हुआ और संस्कारसम्पन्न होकर वे उज्जयिनीके गुरुकुलमें अध्ययन करने चले गये। जब वे वहाँसे लौटे और मथुरामें रहने लगे, तब उद्धव प्रायः उनके साथ ही रहते थे। वे श्रीकृष्णके साथ ही सोते, श्रीकृष्णके साथ ही बैठते, उनके साथ ही टहलते, उनके साथ ही स्नान करते, मनोरंजन और भोजन भी साथ ही करते। उन्होंने अपना हृदय खोलकर श्रीकृष्णके सामने रख दिया था, वे श्रीकृष्णके एक अन्तरंग सखा थे। उन्हें भगवान्के दर्शनमें, सन्निधिमें, आलापमें और आज्ञापालनमें इतना आनन्द आता कि वे सारे जगत्को भूले रहते। श्रीकृष्णके साथ उनका सम्बन्ध सखाका सम्बन्ध था। वे श्रीकृष्णके एकान्त-प्रेमी थे।

भगवान् किस उद्देश्यसे कौन-सी लीला करते हैं, इस बातको स्वयं भगवान् जानते हैं या उनके कृपापात्र संत जानते हैं। हमलोग तो उस लीलाका केवल बाह्यरूप देखते हैं और अपनी बुद्धिके अनुसार उसका अर्थ कर लेते हैं। भगवान्ने एक दिन ऐसी ही लीला रची। पता नहीं गोपियोंके प्रेमसे आकर्षित होकर रची, अपनी दयालुतासे रची, उद्धवके हितके लिये रची अथवा गोपियोंका प्रेम प्रकाशमें लाकर उससे जगत्का कल्याण करनेके लिये रची। सभी बातें ठीक हैं, भगवान्की लीलामें भक्तोंकी अभिलाषा, भगवान्की दयालुता, किसी भक्तका हित और जगत्का कल्याण रहता ही है। हाँ, तो भगवान्ने एक लीला रची।

श्रीकृष्णने अपने परम प्रेमी सखा उद्धवको एकान्तमें ले जाकर उनका हाथ अपने हाथमें लेकर बड़े ही प्रेमसे कहा। उस समय श्रीकृष्णके

मुखमण्डलपर करुणाका संचार हो गया था। उनकी आँखें प्रेमसे भरी हुई थीं। उन्होंने उद्धवसे कहा—'प्यारे उद्धव! तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। यह काम केवल तुम्हारे ही करनेयोग्य है। तुम व्रजमें जाओ। वहाँ मेरे सच्चे माता-पिता रहते हैं। मैं उनकी गोदमें खेलता था, वे दुलारके साथ मुझे अपने हाथोंसे खिलाते थे, आँखोंकी पुतलीकी भाँति मुझे जोगवते ही उनका सारा समय बीतता था। यदि मेरे कलेवा करनेमें तनिक भी देर हो जाती थी तो वे छटपटा उठते थे। मैं हठ करके गौओंको चराने चला जाता था तो दिनभर उनकी आँखें वनकी ही ओर लगी रहती थीं। मेरे बिना उनका जीवन भार हो गया होगा। मक्खन-मिश्री देखकर उन्हें मेरी याद आती होगी, बाँसुरी देखकर वे बेसुध हो जाते होंगे, मेरी प्यारी गौएँ जब मुझे ढूँढ़ती हुई-सी इधर-उधर भटकती होंगी, तब उनका कलेजा फटने लगता होगा। उन्हें केवल तुम्हीं सान्त्वना दे सकते हो। मेरे हृदयकी बात जाननेवाले उद्धव! उन्हें प्रसन्न करनेकी क्षमता केवल तुममें ही है।

'मेरी गोपियाँ हैं, उन्हें मेरे वियोगका कितना दुःख है; वे मेरे लिये बिना पानीकी मछलीकी भाँति किस प्रकार तड़फड़ा रही होंगी, इसका अनुमान और वर्णन नहीं किया जा सकता। उद्धव! मैंने कई बार एकान्तमें तुमसे उनकी चर्चा की है। उन्होंने अपना सर्वस्व मुझे समर्पित कर दिया है, उनका जीवन मेरी प्रसन्नताके लिये है। उन्होंने अपनी आत्मा, अपना हृदय मुझे दे दिया है। वे मुझे सोचा करती हैं, मन-ही-मन मेरी सेवाकी भावना करके अपना समय बिताया करती हैं। उन्होंने अपने प्राणोंको मेरे प्राणोंमें मिला दिया है और उन सब कामोंको छोड़ दिया है जो मेरी प्रीतिके बाधक हैं। और तो क्या, उन्होंने मेरे लिये दुस्त्यज स्वजन और दुस्त्याज्य आर्यपथका त्याग कर दिया है। वे मुझे ही अपना प्रियतम समझती हैं, मेरे विरहमें उनकी आत्मा छटपटा रही होगी। वे विरहसे, उत्कण्ठासे विह्वल हो रही होंगी। उन्हें यमुना देखकर मेरे जल-विहारकी याद आती होगी, लता-कुंज और वन-वीथियोंको देखकर उन्हें मेरी रहस्य-क्रीड़ाका ध्यान आ जाता होगा। कहाँतक कहूँ! व्रजकी एक-एक वस्तु, वहाँका एक-एक अणु, एक-एक परमाणु उन्हें मेरी याद दिलाकर बड़ी व्यथा देता होगा। उद्धव! तुम निश्चय समझो, वे आँख उठाकर

उनकी ओर देखतीतक नहीं, अबतक उन्होंने प्राणत्याग कर दिया होता, यदि पुनः उन्हें मेरे व्रजमें जानेकी आशा नहीं होती! वे मेरी गोपियाँ हैं, उनकी आत्मा मेरी आत्मा है। वे बड़े कष्टसे जीवित रह रही हैं। जाओ, तुम उन्हें मेरा संदेश सुनाओ और समझा-बुझाकर किसी प्रकार उनकी विरह-व्याधि कुछ कम करनेकी चेष्टा करो।

'मेरे वे सखा, मेरे संगी, जिनके साथ मैं खेलता था, जिनसे मेरा ऊँच-नीचका तनिक भी व्यवहार नहीं था, जो घुल-मिलकर मुझसे एक हो गये थे, आज भी गौओंको लेकर जंगलमें चराने आते होंगे, और दिनभर टकटकी लगाकर मथुराकी ओर देखते रहते होंगे। उद्धव! वे मेरे जीवन-सखा हैं, सहचर हैं, मेरी लीलाके सहकारी हैं। उनके साथ मैं जंगलोंमें खाता था। वे अपने घरसे अच्छी-अच्छी चीजें ला-लाकर पहले मुझे खिलाया करते थे। गौएँ दूर चली जातीं तो वे मुझे नहीं जाने देते, स्वयं ही जाकर हाँक लाते थे। उनपर तनिक-सी भी आपत्ति आती तो वे मुझे पुकारने लगते, सच्चे हृदयसे पुकारते। ब्रह्मा उन्हें हर ले गये। मैंने वर्षभरतक उनका रूप धारण किया। ब्रह्मा छक गये। इन्द्रने उनका अनिष्ट करना चाहा, मैंने सात दिनोंतक अँगुलीपर गोवर्धन उठा रखा। उनके साथ मैं उछलता था, कूदता था, खेलता था, उनकी स्मृति मुझे रह-रहकर आया करती है। तुम जाओ, उन्हें केवल तुम्हीं समझा सकते हो।

'मेरी गौएँ हैं। मैं जब उनके पीछे-पीछे चलता था तो वे सिर घुमा-घुमाकर मुझे देख लिया करती थीं। जब मैं बाँसुरीमें उनका नाम लेकर पुकारता तब वे चाहे कहीं भी होतीं, मेरे पास दौड़ी चली आतीं। जब मैं उनकी ललरियोंको सहलाने लगता, तब वे अपना सिर उठाकर प्रेमसे मुझे देखा करतीं और उनके थनोंसे दूध गिरने लगता था। जब मैं बाँसुरी बजाता, तब वे मुझे घेरकर खड़ी हो जातीं और उनके मुँहमें जो घास होती, उसे उगलना और निगलना भी भूल जातीं। उस दिन जब मैं कालिय-कुण्डमें कूद गया था, तब वे सब मेरे पीछे उसमें घुसने जा रही थीं। वे बड़े बलसे रोकी जा सकीं और जबतक मैं निकला नहीं, तबतक किनारे खड़ी होकर रोती तथा रँभाती रहीं। वे अब मुझे न देखकर कितनी पीड़ित, कितनी व्यथित होंगी? उद्धव! वे तुम्हें देखकर कुछ सान्त्वना

प्राप्त करेंगी। मेरी ही जैसी आकृति और मेरे ही जैसे वस्त्रोंको देखकर वे तुमसे प्रेम करेंगी और जब तुम उन्हें सहलाओगे, तब वे प्रसन्नता-लाभ करेंगी।

'उद्धव! व्रजका एक-एक स्थान, वहाँका एक-एक वृक्ष, एक-एक लता मुझे स्मरण आ रही है, मैं उन्हें भूल नहीं रहा हूँ। वहाँके सारस, हंस, मयूर, कोकिल सभी मुझे याद आ रहे हैं। वहाँकी वे हरिण और हरिणियाँ, जो मेरे पास आकर मेरा शरीर खुजलाती थीं, मेरे हृदयमें वैसी ही चेष्टा करती हुई दीख रही हैं। वहाँके भौंरोंकी गुंजार अब भी मेरे कानोंको भर रही है। वहाँके पक्षियोंका कलरव अब भी मेरे मनको मोहित कर रहा है। उद्धव! तुम जाओ, अब तनिक भी विलम्ब मत करो।'

सम्भव है गोपियोंके प्रेमका वर्णन सुनकर उद्धवके मनमें यह अभिलाषा रही हो कि मैं व्रजमें जाकर उनका प्रेम देखूँ अथवा शायद वे ज्ञानमें ही डूबते रहे हों, भगवान्ने प्रेमरसके आस्वादनके लिये उन्हें व्रजमें भेजा हो; कुछ भी हो, भगवान्ने उन्हें व्रजमें भेजा और उन्होंने अविलम्ब आज्ञाका पालन किया। उद्धव भगवान्का संदेश लेकर रथपर सवार हुए और संध्या होते-होते वे व्रजकी सीमामें पहुँच गये। वहाँकी हरी-हरी वनपंक्तियाँ सूर्यकी लाल-लाल किरणोंसे अनुरंजित हो रही थीं, मानो व्रजभूमिने उद्धवके स्वागतके लिये सहस्र-सहस्र लाल पताकाएँ फहरा दी हों। उद्धवका रथ वृन्दावनकी ओर बढ़ रहा था।

२

व्रजभूमि प्रेमकी भूमि है। लीलाकी भूमि है। वहाँके एक-एक रजकण पूर्ण रसमय हैं। वहाँके एक-एक अणुसे अनन्त-अनन्त आनन्दकी धारा प्रवाहित होती है। वहाँकी लताएँ साधारण नहीं हैं, मृदुलताकी लताएँ हैं। वहाँके वृक्षोंकी पंक्ति रसिकोंकी जमात है। वहाँकी नदियाँ प्रेमके अमृतसे भरी रहती हैं। वहाँके वायुमण्डलमें श्रीकृष्णके विग्रहकी दिव्य सुरभि प्रवाहित हुआ करती है। वहाँकी गौएँ साक्षात् उपनिषदें हैं। वहाँका गोरस ब्रह्मरस है। वहाँके ग्वाल, गोपियाँ सब श्रीकृष्णके ही अंग हैं। श्रीकृष्ण ही व्रजके रूपमें प्रकट हैं। श्रीकृष्ण व्रजमय हैं, श्रीकृष्णमय व्रज है। वहाँ प्रेम, आनन्द, शान्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

संध्याका समय था, गौएँ वृन्दावनकी ओर लौट रही थीं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल श्रीकृष्णकी लीलाओंका गायन करते हुए जा रहे थे। किसीकी दृष्टि दूरसे उड़ती हुई धूलपर पड़ी, मानो व्रजकी रजराशि पहले स्नान कराके किसीको व्रजमें आनेका अधिकारी बना रही हो। जब रथ दीखने लगा तब किसीने कहा—'देखो, वह रथ आ रहा है।' किसीने कहा—'श्रीकृष्ण ही होंगे।' किसीने कहा—'हाँ-हाँ, देखो पीताम्बर, माला और कुण्डल दीखने लगे हैं। शरीर भी श्यामवर्णका ही है। वही रथ, वही घोड़े परंतु श्रीकृष्ण अकेले क्यों हैं? क्या दाऊ भैया वहीं रह गये? कन्हैयासे आये बिना नहीं रहा गया होगा, इसीसे वे अकेले चले आये होंगे।' सब-के-सब ग्वालबाल उद्धवके रथकी ओर दौड़ पड़े। उस समय उनके मनमें कितना उल्लास रहा होगा!

ग्वालबालोंने पास जाकर पहचाना। 'ये तो श्रीकृष्ण नहीं हैं। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि वे आवें! परंतु उसी रथपर वैसे ही वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित यह कौन है?' वे इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उद्धव रथ खड़ा करके नीचे उतर पड़े, मन-ही-मन उन्हें प्रणाम करके हृदयसे लगा लिया। उन्होंने कहा—'मैं श्रीकृष्णका सेवक उनके रहस्यसंदेशोंको लेकर यहाँ आया हुआ हूँ। उन्होंने बड़े प्रेमसे तुमलोगोंका स्मरण करके मुझे यहाँ भेजा है। घबरानेकी कोई बात नहीं है, एक-न-एक दिन श्रीकृष्ण तुम्हें मिलेंगे ही। भला तुमलोगोंको छोड़कर वे कैसे रह सकते हैं?'

श्रीदामाने कहा—'क्या श्रीकृष्ण इतने निर्मोही हो गये? परंतु ऐसी सम्भावना नहीं है, उनका हृदय बड़ा कोमल है। वे जब गौओंको चराकर लौटते थे, रातमें हमलोग अपने घर चले जाते थे और वे अपनी माँके पास जाकर सोते थे, तब रातमें भी वे हमारे लिये छटपटाया करते थे। स्वप्नमें भी हमारा नाम लेकर पुकारा करते थे। प्रातःकाल होते ही हमलोगोंके पास आनेके लिये उतावले हो उठते थे। यदि माँ यशोदा सावधान न रहतीं तो वे बिना कुछ खाये-पीये हमलोगोंके पास दौड़ आते थे। दिनभर हमारे साथ खेलते थे, खाते थे, हमें तनिक भी कष्ट नहीं होने देते थे। वे ही हमारे श्रीकृष्ण, वही हमारा कन्हैया मथुरामें जाकर इतना निष्ठुर हो गया। यह कैसे सोचें, कैसे समझें, कैसे विश्वास करें?'

'उद्धव! तुम कहते हो कि एक-न-एक दिन वे हमें अवश्य मिलेंगे। परंतु तुम जानते नहीं कि उनके बिना एक क्षण युगके समान, एक घड़ी मन्वन्तरके समान, एक पहर कल्पके समान और एक दिन द्विपरार्धके समान व्यतीत होता है। हम एक क्षण भी उन्हें नहीं भूल सकते। जब वे हमारे साथ खेलते थे, तब दिन-का-दिन पलक मारते बीत जाता था। आज उनके बिना हमारा जीवन भार हो गया है। सारा संसार शून्य-सरीखा मालूम होता है। वे ही वन हैं, वे ही वृक्ष-लताएँ हैं, जिनके नीचे कोमल कोंपलोंकी शय्यापर श्रीकृष्ण लेट जाते थे, हम बड़े-बड़े पत्तोंसे हवा करके उनके श्रमबिन्दु सुखाते थे। उनके चरण-कमलोंको अपनी गोदमें लेकर अपने हृदयसे सटाते थे। उनके हाथ अपने हाथमें लेकर दिव्य सुखका अनुभव करते थे। वही यमुना है जिसमें हमलोग घंटों जल-क्रीड़ा करते थे। वही व्रजभूमि है जिसमें हमलोग लोटते थे। परंतु वही सब रहनेसे क्या हुआ, श्रीकृष्णके बिना सब काटने दौड़ते हैं, उनकी ओर आँखें उठाकर देखातक नहीं जाता। उद्धव! हम सत्य कहते हैं, हमारी पीड़ा तब और भी बढ़ जाती है, जब ये गौएँ रँभाती हुई अपना सिर उठाकर मथुराकी ओर देखती हैं। ये बछड़े जब किसीको दूरसे आते देखते हैं तो अपनी माँका दूध पीना छोड़कर मानो श्रीकृष्ण ही आ रहे हों, इस भावसे उधर देखने लगते हैं। हमारा हृदय विहर नहीं जाता, विवछके रह जाता है। यदि हमें उनके आनेकी आशा न होती तो अबतक हमारे प्राण न रहते।'

इन ग्वालबालोंका प्रेम देखकर उद्धव तो मुग्ध हो रहे थे। वे पुनः रथपर सवार नहीं हुए। ग्वालबालोंके साथ ही बातचीत करते हुए और व्रजकी दशा* देखते हुए नन्दबाबाके दरवाजेके पास आ पहुँचे। ग्वालबाल दूसरे दिन मिलनेकी बात कहकर अपनी गौओंको ले-लेकर अपने-अपने घर चले गये। उद्धवने जाकर नन्दबाबाको प्रणाम किया। नन्दबाबाने उठकर उन्हें हृदयसे लगा लिया और बड़ी प्रसन्नतासे, बड़े प्रेमसे उन्हें साक्षात् श्रीकृष्ण समझकर उनका सत्कार किया। जब वे नित्य-कृत्य और भोजन-भजनसे निवृत्त हुए तथा प्रसन्न होकर आसनपर बैठे, तब नन्दबाबाने बड़े प्रेमसे उनके पास बैठकर मथुराका कुशल-समाचार पूछा। नन्दबाबाने कहा—'उद्धव! मेरे प्रिय बन्धु वसुदेव कुशलसे हैं न? उनके पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु सब प्रसन्न हैं न? बहुत दुःखके बाद उन्हें सुखके दिन देखनेको मिले हैं, यह भगवान्‌की बड़ी कृपा है। पापी कंस पापके परिणामस्वरूप अपने साथियोंके साथ मारा गया। वह धार्मिक यदुवंशियोंसे बड़ा ही द्वेष रखता था। अब तो सब लोग स्वतन्त्रतासे धर्माचरण कर पाते हैं न?'

नन्दने आगे कहा—'उद्धव! क्या श्रीकृष्ण कभी अपनी माँका स्मरण करते हैं? क्या वे अपने साथ खेलनेवाले ग्वालबालोंको भूल गये? क्या वे अपनी प्यारी गौओंको कभी स्मरण नहीं करते? उनके ही आनेकी आशासे जीवित रहनेवाले व्रजवासियोंको क्या वे भूल सकेंगे? वृन्दावन, यमुना, गोवर्धन आज भी उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। गोवर्धन सिर उठाकर उनका मार्ग देख रहा है। वृन्दावन और यमुना उनके विरहमें सूखते जा रहे हैं। उद्धव! क्या सचमुच वे आयेंगे? क्या उनका सुन्दर मुखड़ा, उनकी तोतेकी ठोर-सी नाक, उनकी मुसकान और उनकी

---

* कुंजनमें भौंरपुंज गुंजरत स्याम स्याम,
बोलत बिहंग त्यों कुरंग स्याम नाम है।
धेनु तृन मुख धरि स्यामई पुकारती हैं,
जमुना-तरंग सोर स्याम सब जाम है॥
बैठतमें बागतमें सोवतमें जागतमें,
स्याम-रट लागत न रागत बिराम है।
कृष्णचन्द्र बिरह मवासी ब्रजबासी सबै,
'रघुराज' हेरि रहे स्याम स्याम स्याम है॥

चितवनका आनन्द मेरी इन आँखोंको प्राप्त हो सकेगा? श्रीकृष्ण केवल मेरे बालक ही नहीं हैं, वे हमारे और सम्पूर्ण व्रजके जीवनदाता हैं। उन्होंने दावाग्निसे, बवंडरसे, वर्षासे, वृषासुरसे और अघासुरसे हमारी रक्षा की है, हमें मृत्युके मुँहसे बचाया है। हम उनके इस दृष्टिसे भी आभारी हैं। परंतु क्या उन्होंने इसी दिनके लिये हमें बचाया था? क्या यही दुःख देनेके लिये उन्होंने हमें सुखी किया था? उद्धव! क्या कहूँ? मैं उनकी शक्तिका स्मरण करता हूँ, उनके खेलका स्मरण करता हूँ, उनका मुखड़ा, उनकी टेढ़ी-टेढ़ी भौंहें, उनकी वे काली घुँघराली अलकें मेरे सामनेसे नाच जाती हैं, वे मेरे सामने हँसते हुए-से दीखते हैं। मेरी गोदमें बैठकर मुझे 'पिताजी', 'पिताजी' पुकारते हुए जान पड़ते हैं। वे मेरे पीछेसे आकर मेरी आँखें बंद कर लेते थे, मेरी गोदीमें बैठकर मेरी दाढ़ी खींचने लगते थे, ये सब बातें मुझे आज भी याद आती हैं, आज भी मैं उसी रसमें डूब जाता हूँ। परंतु हा दैव! कहाँ हैं वे? मैं लाल-लाल ओठोंवाले कमलनयन श्यामसुन्दरको बलराम और बालकोंके साथ यहीं इसी चबूतरेपर खेलते हुए कब देखूँगा? मेरे जीवनको धिक्कार है! मैं उनके बिना भी जीवित हूँ! सच कहता हूँ उद्धव! यदि उनके आनेकी आशा न होती, वे मेरे मरनेका समाचार सुनकर दुःखी होंगे, यह बात मेरे मनमें न होती तो अबतक मैं मर गया होता। सुनता हूँ, गर्गने बतलाया था; और कंस आदिको मारते समय मैंने भी अपनी आँखोंसे उनका बल-पौरुष देखा था कि वे भगवान् हैं। यह सत्य होगा और सत्य है; तथापि वे मेरे पुत्र हैं न! चाहे जो हो जाय, मुझे तो उन दिनोंकी याद बनी ही रहेगी, जिन दिनों वे नन्हें-से बच्चे थे, मैं उन्हें अपनी गोदमें लेकर खेलाता था, वे धूलभरे शरीरसे आकर मेरे कपड़े मैले कर देते थे। मेरे तो वे पुत्र हैं; मैं और कुछ नहीं जानता।'

इतना कहते-कहते नन्द वात्सल्यस्नेहके समुद्रमें डूब गये। नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उनकी बुद्धि श्रीकृष्णकी लीलामें प्रवेश कर गयी और वे कुछ बोल न सके, चुप हो गये। यशोदा वहीं बैठकर नन्दबाबाकी सभी बातें सुन रही थीं। उनकी आँखोंसे आँसू और स्तनोंसे दूध बहा जा रहा था। नन्दबाबाको प्रेममुग्ध देखकर वे उनके पास चली आयीं और संकोच छोड़कर उद्धवसे पूछने लगीं—'उद्धव! तुम तो मेरे लल्लाके पास रहते हो, उसके सखा

हो, वह सुखसे तो है न? सोकर उठा नहीं कि दहीके लिये, मक्खनके लिये मेरे पास दौड़ आया। वहाँ उतने सबेरे उसे कौन खानेको देता होगा? क्या मेरा मोहन दोपहरको ही खाता है? वह दुबला तो नहीं हो गया है? चिन्ता करते-करते उसका सुन्दर मुख मुरझा तो नहीं गया है? क्या वहाँके पचड़ोंमें पड़कर मुझे भूल तो नहीं गया? क्या अपनी माँको भी कोई भूल सकता है? मेरा वही इकलौता लाल है। जब वह मुझसे हठ करता था, किसी बातके लिये मुझसे अड़ जाता था तो बिना वह काम कराये मानता ही नहीं था। वहाँ किसके सामने हठ करता होगा, मेरी ही भाँति कौन उसका दुलार करता होगा? कौन उसकी जिद्दको पूरी करता होगा। मेरा नन्हा व्रजका सर्वस्व है। कुलका दीपक है। उसे खिला-पिलाकर मैंने बहुत-से दिन पलके समान बिता दिये हैं। उस दिनकी बात तुमने भी सुनी होगी। मैं दही मथ रही थी, अभी सूर्यकी रागरंजित रश्मियाँ पूर्व दिशाके क्षितिजको ही चूम रही थीं, मैं तन्मय होकर दही मथनेमें लगी थी और ऐसा सोच रही थी कि मेरा कन्हैया अभी सो रहा है। एकाएक वह आया और पीछेसे उसने मेरी आँखें बंद कर लीं। मैं उसके कोमल करोंका मधुर स्पर्श पाकर आनन्दके मारे सिहर उठी। मैंने धीरेसे अपनी बाँहोंमें लपेटकर उसे अपनी गोदमें ले लिया और दूध पिलाने लगी। कभी-कभी वह दूध पीना छोड़कर मेरी ओर देखता, कितना सुन्दर, कितना कोमल, मरकतमणि-सा चिक्कन उसका कपोल है! लाल-लाल ओठोंमेंसे सफेद-सफेद दँतुलियाँ कितनी सुन्दर लग रही थीं। मैं मुग्ध होकर दुग्धके समान स्निग्ध उसके मुखड़ेको देखती रहती और वह फिर दूध पीने लगता। उद्धव! मुझे वह दिन नहीं भूलता। उस दिन मैंने अपने मोहनको ऊखलसे बाँध दिया था, क्यों? एक छोटे-से अपराधपर! उसने दूधके बर्तन फोड़ दिये थे, मक्खन वानरोंको खिला दिया था। उस बातको याद करके मेरा कलेजा अब भी काँप उठता है! क्या मैं दूध और मक्खनको कन्हैयासे अधिक चाहती हूँ? नहीं, उद्धव! यह बात स्वप्नमें भी नहीं है। आज भी मेरे पास दही है, दूध है, मक्खन है परंतु मेरे हृदयका टुकड़ा, मेरी आँखोंका ध्रुवतारा, अंधेका सहारा मेरा कन्हैया मेरे पास नहीं है। उसके न होनेसे अब ये सब रहकर मुझे जलाते हैं। देखो, यह वही आँगन है, वही दरवाजा है, वही घर है और वही गलियाँ हैं! ये सब मोहनके बिना मुझे काटने दौड़ते हैं। मेरी आँखें कृष्णको ढूँढ़ती हुई इनपर पड़ती हैं, परंतु उसे न देखकर ये लौट आती हैं और मनमें

यह बात आती है कि यदि ये आँखें न होतीं तो अच्छा होता! यमुना-किनारे जाती हूँ, घंटों बैठकर उसकी लहरियाँ गिनती रहती हूँ। ऐसा मालूम पड़ता है कि इसी नीले जलमें वह कहीं छिपा होगा; परंतु जब घंटों नहीं निकलता तो आँखोंपर बड़ा क्रोध आता है। मैं अपने हाथोंसे ही इन आँखोंको फोड़ डालती, अपने श्यामसुन्दरके अतिरिक्त और किसीको देखना ही क्या है, परंतु उसीको देखनेकी लालसासे इन्हें बचा रखा है। क्या कभी मेरी अभिलाषा पूरी होगी, क्या दो दिनके लिये भी वह मेरे पास आवेगा? क्या मैं फिर उसे अपनी गोदमें ले सकूँगी? उद्धव! क्या मेरा जीवन, मेरी आँखें कभी सफल हो सकेंगी?'

यशोदाकी आँखोंसे झर-झर आँसूके निर्झर बह रहे थे। उनका गला भर आया, वे चुप होकर उद्धवकी ओर देखने लगीं। नन्द और यशोदाके इस अलौकिक प्रेमको देखकर उद्धव अवाक् हो गये। उनसे कुछ बोला नहीं गया। उद्धवमें शान्त भक्ति पहलेसे ही थी, दास्यभाव भी था, सख्यका भी कुछ अंकुर उग आया था; उनकी ऐसी ही मानसिक स्थितिमें श्रीकृष्णने उन्हें वृन्दावन भेजा था। वृन्दावनमें प्रवेश करते ही उद्धवको सख्य-रसकी पूर्णता प्राप्त हुई। श्रीदामा आदि गोपोंसे मिलकर उन्होंने जाना कि सख्य-रसकी पूर्णता क्या है? व्रजमें प्रवेश करनेपर उन्होंने देखा, व्रजके घर-घरमें, वन-वनमें, वहाँके पशु-पक्षी—मनुष्य सभी श्रीकृष्णका गुणानुवाद गा रहे हैं। वहाँके एक-एक अणुसे श्रीकृष्णके नामकी ध्वनि निकल रही थी। नन्द और यशोदाके पास आकर उन्होंने वात्सल्य-रसका दर्शन किया। उनकी समझमें ही नहीं आता था कि इन्हें क्या समझावें, इनसे क्या कहें? अन्तमें उन्होंने सोचा कि इन्हें श्रीकृष्णका ऐश्वर्य सुनाना चाहिये। वे कहने लगे। अबतक नन्दबाबा भी सँभालकर बैठ गये थे।

उद्धवने कहा—'बाबा नन्द! माँ यशोदा! आपलोग धन्य हैं। आपका जीवन सफल है। यदि मेरे रोम-रोम जीभ बन जायँ तो भी मैं आपकी पूरी प्रशंसा नहीं कर सकता। परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णमें—क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तममें आपलोगोंका इतना सुन्दर भाव है, आपकी ऐसी भक्ति है, इसकी महिमा कौन गावे? तीर्थयात्रा, तपस्या, दान, ज्ञान और समाधिसे जिस वस्तुकी प्राप्ति की जाती है, वह प्रेम-लक्षणा भक्ति आपको स्वयं ही प्राप्त हो गयी है। श्रीकृष्ण केवल आपके

बालक ही नहीं हैं, वे सम्पूर्ण पिताओंके पिता हैं। वे संसारके मूल कारण हैं। बलराम उन्हींकी शक्ति हैं। उन्हींकी प्रेरणासे संसारमें ज्ञान होता है और सब वस्तुएँ चेष्टा करती हैं। कोई भी प्राणी मृत्युके समय एक क्षण भी उनका चिन्तन कर ले तो उसके सारे कर्म धुल जाते हैं और वह ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होता है। आपलोगोंका उनसे सम्बन्ध तो है ही, उन्हें केवल अपना पुत्र न समझें। उन्हें सबका कारण, सबकी आत्मा समझें। यदि आप ऐसा कर सकेंगे तो फिर आपका कोई कर्तव्य शेष नहीं रहेगा।'

'वे शीघ्र ही यहाँ आयेंगे भी। यदि आप उन्हें शरीरसे देखना चाहते हैं तो यह भी होगा, आप उनसे प्रेम करें और वे आपके पास न आवें, ऐसा नहीं हो सकता। कंस आदि दुष्टोंको मारनेके बाद यदुवंशियोंकी रक्षा-दीक्षाका सारा भार उन्हींपर आ पड़ा है। उनकी व्यवस्था करके वे यहाँ आ सकते हैं। गोपोंके वहाँसे चलनेके समय जो कुछ उन्होंने कहा था उसे श्रीकृष्ण अवश्य पूरा करेंगे। आपलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं। आप अपने निकट ही श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त करेंगे। वे आपसे दूर थोड़े ही हैं। वे आपके अन्तरात्मा हैं, वे काष्ठमें अग्निकी भाँति सर्वत्र व्यापक हैं। उनके लिये खिन्न होनेकी आवश्यकता नहीं। उनका न तो कोई प्रिय है और न तो अप्रिय। उनकी दृष्टिमें न कोई ऊँचा है, न नीचा। वे सर्वत्र समान हैं। अभिमान उनका स्पर्श नहीं कर पाता। न तो उनकी कोई माता है, न पिता है, न पत्नी है और न पुत्र। न उनका कोई अपना है, न पराया। न शरीर है और न तो जन्म। न उनका कोई कर्म है और न तो उन्हें कर्मोंका फल भोगना है। वे अपने प्रेमी भक्तोंकी रक्षाके लिये लीलावतार ग्रहण करते हैं।

'सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण हैं। वे निर्गुण होनेपर भी क्रीड़ाके लिये इन गुणोंको स्वीकार करते हैं और संसारकी सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करते हैं। जैसे घूमती हुई वस्तुपर चढ़कर देखें तो सारी पृथ्वी घूमती हुई-सी दीख पड़ती है, वैसे ही चित्त कर्त्ता-भोक्ता है और उसका आरोप आत्मापर किया जाता है। श्रीकृष्ण केवल तुम दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे भगवान् हैं, सबके पुत्र हैं, सबके पिता-माता हैं, सबके ईश्वर हैं और सबके आत्मा हैं। जो कुछ कभी हुआ है, जो कुछ है या हो रहा

है, जो कुछ होगा या हो सकता है, जो कुछ देखा या सुना गया है, जो कुछ जड़ या चेतन है, जो कुछ बड़ा या छोटा है, सब कुछ श्रीकृष्ण हैं, श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। वे सब हैं, केवल वही हैं, एकमात्र वही परमार्थ वस्तु हैं।'

इस प्रकार उन लोगोंमें बात होते-होते सारी रात बीत गयी। गोपियाँ अपने-अपने घर उठकर घरके देवताओंको नमस्कार करके दही मथने लगीं। वे एक स्वरसे 'गोविन्द, दामोदर, माधव' इत्यादि श्रीकृष्णके नामोंका सुमधुर गायन कर रही थीं। उनकी बँधी हुई आवाज स्वर्गका स्पर्श कर रही थी, सारी दिशाएँ गूँज रही थीं, उनके इस प्रेम-गायनको सुनकर उद्धवने अपनी बात समाप्त की और नित्यकृत्य करनेके लिये वे यमुना-तटपर गये।

३

भगवत्सम्बन्धके जितने भाव हैं, उनमें सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—ये तीन भाव प्रधान हैं। यों तो भगवान्‌के साथ होनेवाले सभी सम्बन्ध उत्तम ही हैं परंतु व्रजभूमिमें इन्हीं तीनोंकी विशेषता है। इन तीनोंमें भी माधुर्यभाव परम भाव है और वह रहस्य रस है। जो भगवान्‌के सख्य और वात्सल्यभावसे परिचित नहीं, इस मधुरतम रसमें उनका प्रवेश नहीं हो सकता। मधुर भाव क्या है? आत्माका आत्मामें रमण। भगवान्‌का अपनी आत्मस्वरूपा एवं अन्तरंगा शक्तियोंके साथ, जो कि भगवन्मय ही हैं, दिव्य क्रीड़ा। आनन्द और प्रेमका संयोग। त्रिगुणसे परे, प्रकृतिसे परे जो आत्माका आत्मस्वरूप ही रस है उसका आस्वादन। इसे उज्ज्वल रस भी कहते हैं।

इस उज्ज्वल रसमें एक होनेपर भी दो प्रकारकी अवस्थाएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक मिलनकी और दूसरी बिछोहकी। भगवान्‌से मिलन और उनके साथ रास-क्रीड़ाका अवसर विरले ही भाग्यवानोंको मिलता है। उसे चाहनेपर भी गोपियोंकी पद-रज हृदयमें धारण किये बिना कोई नहीं पा सकता। अधिकांश लोग ऐसे ही हैं, जो भगवान्‌से बिछुड़े हुए हैं और यदि चाहें तो इस बिछोहके द्वारा ही भगवान्‌के उस दिव्य रसका लाभ कर सकते हैं। बिछोहके मार्गमें भी कई बाधाएँ हैं; इस मार्गका साधक पद-पदपर निराश हो सकता है। उसके मनमें यह भाव आ सकता है कि इतने दिन हो गये, परंतु श्रीकृष्ण नहीं आये। अब वे नहीं आवेंगे। यह सोचकर वह साधनासे विरत हो सकता है। परंतु ऐसा होना ठीक नहीं है। इस बातको हम गोपियोंसे सीख सकते हैं।

मथुरा वृन्दावनसे तीन ही कोसपर थी। श्रीकृष्ण वहाँ दो दिनके लिये आ सकते थे अथवा गोपियाँ ही कुछ दिनोंके लिये वहाँ जा सकती थीं। परंतु ऐसा करनेसे उनके जीवनमें वियोगका आदर्श पूरा नहीं उतरता। गोपियाँ श्रीकृष्णसे अलग थोड़े ही हैं। श्रीकृष्ण गोपियोंसे अलग थोड़े ही हैं। यह वियोगकी लीला वियोगी साधकोंके आदर्शके लिये है। यदि बीचमें ही श्रीकृष्ण और गोपियोंका मिलन हो जाता तो वियोग-साधनाका आदर्श नहीं बनता। इसी आदर्शसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिये या यों कहिये कि इसी

आदर्शको जगत्में प्रकट करनेके लिये उद्धव व्रजभूमिमें गोपियोंके पास आये हुए हैं। हम इन दोनों बातोंकी परिणति उद्धवके जीवनमें पायेंगे। अभी तो उद्धव सीख रहे हैं, सीखने आये हैं। आगे चलकर श्रीकृष्णके वियोगमें भी इन्हें जीवन धारण करना पड़ेगा और संसारके सामने प्रेमभक्तिका आदर्श स्थापित करना होगा तथा उसका रहस्य बतलाना होगा। व्रजमें उन्होंने गोपियोंमें क्या देखा, क्या सीखा, अभी तो यही चर्चा प्रासंगिक है।

सूर्योदयका समय था। दूध दुहा जा चुका था। दही मथनेकी ध्वनि अब कम हो चली थी। हरे-हरे वृक्षोंपर रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे थे। बछड़े भी कुदक-कुदककर अपने हमजोलियों और माताओंसे खेल रहे थे। प्रेमकी करुणामिश्रित धारा चारों ओर फैली हुई थी, सब कुछ था परंतु वह रौनक न थी जो श्रीकृष्णके रहनेपर रहती थी। सभीकी आँखें किसीका अन्वेषण कर रही थीं। सबको एक अभाव-सा खटक रहा था और जहाँ दृष्टि पड़ती थी वहाँ सूना-सा ही जान पड़ता था। मशीनकी भाँति सब अपने-अपने काममें लगे हुए थे परंतु उनमें उत्साह नहीं था, स्फूर्ति नहीं थी। वे उन कामोंकी ओरसे कुछ उदासीन, कुछ शिथिल और कुछ खिंचे हुए-से जान पड़ते थे।

गोपियाँ घरसे बाहर निकलीं। उन्होंने देखा कि नन्दके द्वारपर एक बहुत सुन्दर सोनेका रथ खड़ा है। सभीके मनमें कुतूहल हुआ कि यह किसका रथ है? किसीने कहा, रथ तो वही है जिसपर श्रीकृष्ण गये थे। तब यह फिर क्यों आया है! कृष्णका नाम सुनकर बहुतोंकी आँखोंसे आँसू चू पड़े। कई मन मसोसकर रह गयीं। उनकी कुछ सोयी हुई-सी कसक उभर आयी। किसीने कहा—'अब किसको ले जायगा? यहाँ ले जानेके लिये है ही क्या? श्रीकृष्ण गये हमारी आत्मा गयी। हमारे प्राण गये, अब यहाँ सूखे हाड़ोंकी ठटरी है। इसे कोई क्या करेगा? हाँ, हम श्रीकृष्णकी हैं। उन्होंने कहा है कि हम आयेंगे। उनकी बात झूठी नहीं हो सकती। वे आवेंगे और उस दिनके लिये हमें इन ठटरियोंको बचा रखना है। शायद वे आवें और हमें न पावें तो उन्हें क्लेश होगा। बस, इसीलिये हमें जीवित रहना है।'

इसी समय यमुनामें स्नान करके आते हुए उद्धव दीख पड़े। उद्धवको देखकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ। वैसा ही शरीर, वैसी ही बाँहें, वैसे

ही कमलके समान नेत्र, गलेमें कमलकी माला और पीताम्बर धारण किये हुए। मुखपर वैसी ही प्रसन्नता खेल रही थी। परंतु ये श्रीकृष्ण न थे। ये दर्शनीय पुरुष कौन हैं, कहाँसे आये और श्रीकृष्णके समान ही इन्होंने वेष-भूषा क्यों धारण कर रखी है? हो-न-हो ये उन्हींके अनुचर हैं। उन्हींके सहचर हैं। उन्होंने ही इन्हें भेजा होगा। तब क्या वे हमारा स्मरण करते हैं? जैसे उनके लिये हम छटपटाती रहती हैं, क्या वैसे ही हमारे लिये वे छटपटाते रहते हैं? हो सकता है छटपटाते हों। परंतु नहीं, तब क्या वे दो दिनके लिये आ नहीं सकते थे? फिर इन्हें भेजा क्यों है? माता-पिताकी सान्त्वनाके लिये! अच्छी बात है। पर क्या केवल बातोंसे ही उनका हृदय शान्त हो जायगा? उन्हें आश्वासन मिल जायगा? यह असम्भव है। शायद हमारे लिये भी कुछ संदेश कहला भेजा हो! न भी कहलाया हो तो क्या, ये अनुचर तो हैं न! इनसे बात करनेपर उनकी कोई बात सुननेको मिलेगी। चलो, हम सब उनके पास चलें। अबतक उद्धव पास आ गये थे।

गोपियोंने श्रीकृष्णके सदृश समझकर ही उद्धवका सत्कार किया। एकान्तमें ले जाकर उन्होंने पूछा—'उद्धव! तुम तो श्रीकृष्णके प्रेमी अन्तरंग सखा हो। क्या उनके हृदयकी कुछ बात कह सकते हो? उन्होंने केवल नन्द-यशोदाके लिये ही तुम्हें भेजा होगा, अन्यथा व्रजमें उनके स्मरण करनेकी और कौन-सी वस्तु है? क्या उन्होंने हमें सचमुच छोड़ दिया? अब वे यहाँ न आवेंगे? परंतु यह कैसे हो सकता है? वे आवेंगे, अवश्य आवेंगे। उद्धव! हमारे हृदयकी क्या दशा है। हमारी आत्मा कितनी पीड़ित हो रही है, इसे कोई क्या जान सकता है? क्या इस वेदनाका कहीं अन्त भी है? हमें तो नहीं दीखता। हम जितना उपाय करती हैं, उतना ही अधिक यह बढ़ती जाती है। किससे कहें, कहनेसे लाभ ही क्या है?'

'उद्धव! जिस दिनसे हमने उनके सौन्दर्यका वर्णन सुना था, उनकी रूपमाधुरी देखी थी, उनकी मधुर वंशीध्वनि सुनी थी उसी दिनसे और वास्तवमें तो उसके पहले ही हम उनके हाथों बिक गयीं। उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे, मन्द-मन्द मुसकानसे, अनुग्रहभरी भौंहोंके इशारेसे हमें स्वीकार कर लिया। वे स्वीकार न करते तो भी हम उनकी ही थीं, उनकी

ही रहतीं। परंतु जब उन्होंने स्वीकार कर लिया तब तो उनपर हमारा हक हो गया, हमारा दावा हो गया। चाहिये तो यह था कि वे हमारी इच्छाके विपरीत एक क्षणके लिये भी हमसे अलग नहीं होते। परंतु हम यह नहीं चाहतीं। हृदयसे चाहनेपर भी उनपर कोई दबाव नहीं डालतीं, उनसे कहतीं नहीं परंतु हम इसी प्रकार कितने दिनोंतक घुल-घुलकर मरती रहेंगी? हम बहुत दिनोंतक शान्तिसे प्रतीक्षा भी करती रहतीं यदि ये दिन शीघ्रतासे बीतते होते। एक-एक दिन पहाड़-से भारी होते जा रहे हैं। समुद्र-से अपार होते जा रहे हैं! हम क्या करें, ये दिन कैसे बितावें? एक पल युग हो गया, आँखोंसे आँसुओंकी धारा रुकती ही नहीं, सब सूना-ही-सूना दीखता है। हमारा यह सूनापन क्या कभी बीतेगा ही नहीं?'

'उद्धव! हमें अपने वे दिन स्मरण हैं, जब हमारे प्रियतम, हमारे श्रीकृष्ण गौओंको चरानेके लिये जंगलमें जाया करते थे। एक-एक पल हम विकल होकर बितातीं और हृदय हहरता रहता कि कहीं उनके कमल-से कोमल चरणोंमें काँटे-कुश न गड़ जायँ। उनके लाल-लाल तलुओंमें पीड़ा न पहुँच जाय। उद्धव! हमारा हृदय जानता है, परमात्मा इस बातका साक्षी है कि जब हम उनके चरणकमलोंको अपने कठोर हृदयपर रखती थीं, तब हमें बड़ा डर लगता था कि कहीं चोट न पहुँच जाय। वे जब गौओंको चरानेके लिये जंगलमें जाने लगते तब हम नन्दबाबाके दरवाजेपर पहुँच जातीं, रास्तेमें जाकर खड़ी हो जातीं और जबतक वे आँखोंसे ओझल न हो जाते, तबतक एकटक उन्हें देखती रहतीं। काम करनेके लिये घर लौटतीं तो काम-काजमें मन नहीं लगता और करते समय भी ऐसा मालूम होता कि मानो वे हमारे सामने ही खड़े हैं। हम धान कूटती होतीं तो वे आकर मूसल पकड़ लेते। हम दही मथती होतीं तो वे मथानी पकड़कर रोक देते, हम झाड़ू लगाती होतीं तो वे आकर सामने खड़े हो जाते। हम यमुनाका जल लानेका, दही बेचनेका और भी किसी काम-काजका बहाना बनाकर कई बार वनमें जातीं और उन्हें देख आतीं। जब वे शामको लौटते, हम पहलेसे ही रास्तेपर खड़ी होतीं और उनका मार्ग देखा करतीं। वे जब बाँसुरी बजाते हुए ग्वालबालोंके साथ लौटते थे, उनके घुँघराले काले केशोंपर व्रजरज पड़ी

होती थी, उनके कपोलोंपर श्रमबिन्दु उग आये होते थे तो देखकर हमें कितनी प्रसन्नता होती, कितना आनन्द होता, कह नहीं सकतीं। हम रातमें भी नन्दबाबाके घर जातीं। वे बाँसुरी बजाकर हमें वनमें बुलाते, हमारे साथ क्रीड़ा करते। वह सब कहनेसे अब कोई लाभ नहीं। हमने व्रत करके, उपवास करके, देवी-देवताओंकी मानता करके, हृदयसे, आत्मासे यही चाहा था कि श्रीकृष्ण ही हमारे स्वामी हों, वे हुए भी; परंतु उद्धव! अब वे कहाँ हैं? अब हम उनकी बातें कह रही हैं, उनका संदेश हम पा रही हैं, उनका सुमिरन हम कर रही हैं, परंतु वे अब कहाँ हैं? हमारे बीचमें वे नहीं हैं। हमारा जीवन भार है, व्यर्थ है।' कहते-कहते गोपियाँ तन्मय हो गयीं। उनका बाह्यज्ञान जाता रहा।

गोपियोंमें जब कुछ-कुछ चेतना आयी, तब वे पागलोंकी भाँति चेष्टा करने लगीं। कोई वृक्षको श्रीकृष्ण समझकर उसे उलाहना देने लगी, कोई लताकुंजमें श्रीकृष्णकी उपस्थिति मानकर वहाँसे मुँह फेरकर लौटने लगी, कोई पत्तेकी खड़खड़ाहटसे श्रीकृष्णके आगमनकी अपेक्षा करने लगी और कोई चम्पा, मालती, जूही, गुलाब, कमल आदि फूलोंसे श्रीकृष्णके सम्बन्धमें बातें करने लगी। किसी भौंरेपर दृष्टि पड़ गयी तो कोई उसे श्रीकृष्णका दूत मानकर उसीको डाँट-फटकार सुनाने लगी। उनकी विचित्र दशा हो गयी। वे सारे संसारको, शरीरको, प्राणको और आत्माको भूलकर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन हो गयीं। वे श्रीकृष्णकी लीलाओंका गायन करते-करते संकोच छोड़कर रोने लगीं। उद्धवका हृदय द्रवित हो गया, वे गोपियोंके विरहकी ऊँची दशा देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने किसी प्रकार गोपियोंको सान्त्वना देकर कहना शुरू किया।

उद्धवने कहा—'गोपियो! तुम्हारा जीवन सफल है, सारे लोक और लोकाधिपति तुम्हारी पूजा करते हैं। श्रीकृष्णमें इतना प्रेम, श्रीकृष्णमें इतनी तन्मयता और कहीं देखी नहीं गयी, और कहीं हो नहीं सकती। बड़े-बड़े दान, व्रत, तप, होम, जप, स्वाध्याय, संयम और दूसरे भी कल्याणकारी उपायोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त की जाती है। *

* दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ।
श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते॥

बड़े-बड़े मुनियोंको जिस प्रेमकी प्राप्ति दुर्लभ है, सौभाग्यवश वह प्रेम तुम्हें प्राप्त हुआ है। भगवान्‌के साथ तुम्हारा वह सम्बन्ध हुआ है। यह बड़े ही सौभाग्य और तपस्याका फल है कि तुमलोगोंने अपने पुत्र, पति, स्वजन, देह, गेह और सर्वस्वका त्याग करके पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको पतिरूपमें वरण किया है*। भगवान् श्रीकृष्णके विरहसे तुम्हें सर्वात्मभावकी प्राप्ति हो गयी है। तुम्हें हर जगह श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण दीखते हैं। तुम्हारे पास भेजकर श्रीकृष्णने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया है। मैं तुम्हारे दर्शनसे धन्य हो गया। कल्याणी गोपियो! उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश कहा है, मैं वही सुनाता हूँ। वह सुनकर तुम्हें बड़ा ही आनन्द होगा। उनका यही एकान्त संदेश लेकर मैं तुम्हारे पास आया हूँ।'

'श्रीकृष्णने कहा है—मेरी प्रिय गोपियो! मैं कभी तुमलोगोंसे अलग नहीं रह सकता। जैसे पृथ्वी, जल, वायु—ये आकाशसे अलग नहीं हो सकते, वैसे ही तुम हमसे अलग नहीं हो सकती। तुम्हारा मन, तुम्हारा प्राण, तुम्हारा शरीर, तुम्हारी इन्द्रियाँ, तुम्हारे गुण और जो कुछ तुम हो, सब मुझमें है, मैं सबका आश्रय हूँ। मैं अपने-आपमें, अपने-आपकी सृष्टि करता हूँ, अपने-आपका ही पालन करता हूँ और अपने-आप ही अपने-आपका संहार करता हूँ। मैं अपनी ही मायासे, अपनी ही शक्तिसे स्वयं ही इन रूपोंमें बन जाता हूँ। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वह मायासे रहित और गुणोंसे परे है। स्वप्न, सुषुप्ति, जाग्रत्—इन तीनों अवस्थाओंसे परे और इनका साक्षी है। ये विषय, यह संसार उसमें स्वप्नकी भाँति उठ खड़ा हुआ है। यह मिथ्या है। वियोग तो तब है, जब इस मिथ्या संसारकी ओर दृष्टि है। उसकी ओरसे इन्द्रियोंको, मनोवृत्तियोंको खींचकर आत्मामें लगाओ। उन्हें अन्तर्मुख करो, सारे सिद्धान्तों और साधनोंका यही उद्देश्य है। वेद, योग, सांख्य, त्याग, तपस्या, दम और सत्य इनका यही लक्ष्य है। मैं बाह्य-दृष्टिसे तुमलोगोंसे दूर अवश्य हूँ, परंतु केवल आँखोंसे ही दूर हूँ न! आँखकी दूरी दूरी नहीं। दूरी तो मनकी होती है। वहाँ रहनेकी

* दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च।
हित्वावृणीत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम्॥

अपेक्षा मेरे यहाँ रहनेसे तुम्हारा मन मुझमें अधिक लगेगा। मेरा विशेष चिन्तन होगा। ऐसा होता आया है और ऐसा ही होता है। सम्पूर्ण वृत्तियोंको छोड़कर अपने मनको केवल मुझमें लगा दो। मेरा स्मरण करती रहो। शीघ्र ही तुम मुझे प्राप्त कर लोगी। तुम्हें पता है न? जिस दिन मैं रास कर रहा था, कई गोपियाँ शरीरसे मेरे पास नहीं आ सकीं, उन्होंने सच्चे हृदयसे प्रेमसे मेरा स्मरण किया और शरीरसे पहुँचनेवाली गोपियोंके पहले ही वे मेरे पास पहुँच आयीं। मैं तुम्हारे पास ही हूँ। तुम्हारे हृदयमें हूँ, तुम्हारी आत्माके रूपमें हूँ। 'वियोग क्या वस्तु है' इसके लिये पीड़ित होनेकी क्या आवश्यकता? मुझे ढूँढ़ो मत, मेरा अनुभव करो, मैं तुम्हारे पास हूँ।'

उद्धव इतना कहकर चुप हो गये। अपने प्रियतमका आदेश, अपने प्राणोंका संदेश सुनकर गोपियोंको बड़ा ही आनन्द हुआ। उनके संदेशसे उनकी स्मृति ताजी हो गयी।* वे प्रसन्न होकर उद्धवसे बोलीं—'श्रीकृष्ण प्रसन्न हैं, आनन्दसे हैं, यह बड़ी अच्छी बात है। कंस और उसके अनुचर मर गये, जगत्का बड़ा कल्याण हुआ। जैसे हम उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होती थीं, वैसे ही मथुरावासी भी उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होते होंगे। वहाँके लोग विशेष प्रेमी होंगे, उनके प्रेमपाशमें श्रीकृष्ण बँध जायँ, यह स्वाभाविक ही है! क्या वे उनमें रहकर हमारी याद रख सकेंगे? रखते हैं? क्या उन्हें वह रात्रि याद है, जब उन्होंने चन्द्रिकाचर्चित वृन्दावनमें हमलोगोंके साथ गा-गाकर, नाच-नाचकर रासलीला की थी! क्या वे हमारे प्राणोंको जीवित करनेके लिये यहाँ आवेंगे? अब वे हम वनवासियोंके पास क्यों आने लगे? वे आत्माराम हैं, पूर्णकाम हैं; उन्हें हमारी क्या अपेक्षा है? हम जानती हैं कि आशासे निराशा अच्छी है। तथापि श्रीकृष्णकी ओर हमारी आँखें लगी हैं। हमारी आशाकी, अभिलाषाकी लड़ियाँ नहीं टूटतीं। भला, उन्हें कौन छोड़ सकता है? उनके न चाहनेपर भी लक्ष्मी एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ सकतीं। उद्धव! यमुनाके

---

* एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः।
ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशागतस्मृतीः॥

पुलिन, गोवर्धनके शिखर, क्रीड़ाके वन, उनकी दुलारी हुई गौएँ, उनकी बाँसुरीकी ध्वनि बार-बार उनकी याद दिला देती हैं। अब भी वृन्दावनकी भूमि उनके चरण-चिह्नोंसे रहित नहीं हुई है। हम भला उन्हें कैसे भूल सकती हैं? उनका स्मरण ही हमारा जीवन है। उनकी ललित गति, मधुर मुसकान, लीलाभरी चितवन और प्रेमसनी वाणीसे मोहित होकर हमने अपना हृदयहार दिया है, अपना सर्वस्व उनके चरणोंमें निछावर कर दिया है। हम भला उन्हें कैसे भूल सकती हैं? हे नाथ, हे रमानाथ, हे व्रजनाथ, हे दीनबन्धो! हम दुःखके समुद्रमें डूब रही हैं, हमें बचाओ! हमारा उद्धार करो!'

श्रीकृष्णके संदेशोंसे गोपियोंकी विरहज्वाला बहुत कुछ शान्त हुई। वे उद्धवको श्रीकृष्णस्वरूप मानकर उनका सत्कार करने लगीं। उन्होंने कहा—'उद्धव! तुम राधिकाके पास चलो। भगवान्‌के विरहमें उनकी क्या दशा हो रही है, चलकर देखो। वे मर-मरकर जीती हैं, जी-जीकर मरती हैं। चिन्ता, जागरण, मूर्च्छा, प्रलय इन्हींका क्रम चालू रहता है। वे कभी मत्त हो जाती हैं, कभी मोहित हो जाती हैं, चलो उनके दर्शन करो, उनके चरणोंमें सिर नवाकर कुछ सीखो।' उद्धवने उनके साथ श्रीराधाके पास जानेके लिये प्रस्थान किया।

सारे जगत्‌के आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं। यह जगत् तभी सुखी होता है, शान्ति पाता है, जब अपनी आत्मा भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव करता है। बिना उनके इसमें सुख नहीं, शान्ति नहीं, आनन्द नहीं। परंतु श्रीकृष्णकी आत्मा क्या है, कौन-सी ऐसी वस्तु है, जिसके बिना श्रीकृष्ण भी छटपटाते रहते हैं और जिसे पाकर उनका आनन्द अनन्त-अनन्त गुना बढ़ जाता है। वह हैं श्रीराधा। श्रीराधा ही श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और उन्हींके साथ रमण करनेके कारण श्रीकृष्णको आत्माराम कहा गया है[१]। श्रीकृष्णके बिना राधा प्राणहीन हैं और राधाके बिना श्रीकृष्ण आनन्दहीन हैं। ये दोनों कभी अलग होते ही नहीं। अलग होनेकी लीला करते हैं और इसलिये करते हैं कि लोग परम प्रेमका, परम आनन्दका साक्षात् दर्शन करें। इनके दर्शन श्रीकृष्णमें, श्रीराधामें ही सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त हो सकते हैं।

जबसे श्रीकृष्ण मथुरा गये, तबसे राधाकी विचित्र दशा थी। रातको नींद नहीं आती, दिनको शान्तिसे बैठा नहीं जाता, कभी वृत्तियाँ लय हो जाती हैं तो कभी मूर्च्छित। कभी पागल-सी होकर नाना प्रकारके प्रलाप करती हैं तो कभी सुरीली वीणाके तारोंको छेड़कर मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरके गुणानुवादोंका गायन करती हैं।[२] एक-एक पल बड़े दुःखसे किसी प्रकार व्यतीत करती हैं और इतनी बेसुध रहती हैं कि रात बीत गयी, दिन बीत गया, इन बातोंका इन्हें पतातक नहीं चलता। आँसुओंकी धारा बहती रहती है, समझानेसे, सान्त्वना देनेसे उनकी पीड़ा और भी बढ़ जाती है।

उद्धव जिस समय उनके पास पहुँचे उस समय वे मूर्च्छित थीं। उद्धवने उन्हें जाकर देखा तो वे गद्‌गद हो गये; भक्तिसे उनकी गरदन झुक गयी। सारे शरीरमें रोमांच हो आया। वे श्रद्धाके साथ स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारे चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ। तुम्हारी कीर्तिसे ही सारा संसार भरा हुआ है। तुम भगवान् श्रीकृष्णकी

---

१. आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ।
आत्माराम इति प्रोक्त ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥

२. वीणां करे मधुमतीं मधुरस्वरां तामाधाय नागरशिरोमणिभावलीलाम्।
गायन्त्यहो दिनमपारमिवाश्रुवर्षैर्दुःखान्नयन्त्यहह सा हृदि मेऽस्तु राधा॥

नित्यप्रिया आह्लादिनी शक्ति हो। वे जब जहाँ जिस रूपमें रहते हैं, तब तहाँ वैसा ही रूप धारण करके तुम भी उनके साथ रहती हो। जब वे महाविष्णु हैं, तब तुम महालक्ष्मी हो। जब वे सदाशिव हैं, तब तुम आद्याशक्ति हो। जब वे ब्रह्मा हैं, तब तुम सरस्वती हो। जब वे राम हैं, तब तुम सीता हो और तो क्या कहूँ; माता! तुम उनसे अभिन्न हो। जैसे गन्ध और पृथ्वी, जल और रस, रूप और तेज, स्पर्श और वायु, शब्द और आकाश पृथक्-पृथक् नहीं हैं, एक ही हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण तुमसे पृथक् नहीं हैं। ज्ञान और विद्या, ब्रह्म और चेतनता, भगवान् और उनकी लीला जैसे एक हैं, वैसे ही तुम भी श्रीकृष्णसे एक हो। वे गोलोकेश्वर हैं तो तुम गोलोकेश्वरी हो। देवि! यह मूर्च्छा त्यागो, होशमें आओ, मुझे दर्शन देकर मेरा कल्याण करो।'

उद्धवकी प्रार्थना सुनकर 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कहती हुई राधा होशमें आयीं। उन्होंने आँखें खोलकर धीरेसे पूछा—'श्रीकृष्णके समान शरीर और वेष-भूषावाले तुम कौन हो? तुम कहाँसे आये हो? क्या श्रीकृष्णने तुम्हें भेजा है? अवश्य उन्होंने ही तुम्हें भेजा है। अच्छा बताओ, वे यहाँ कब आवेंगे? मैं उन्हें कब देखूँगी? क्या उनके कमल-से कोमल शरीरमें मैं फिर कभी चन्दन लगा सकूँगी?' उद्धवने अपना नाम-धाम बताकर आनेका कारण बताया। राधिका कहने लगीं—'उद्धव! वही यमुना है। वही शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु है। वही वृन्दावन है और वही कोयलोंकी कुहक है। वही चन्दन-चर्चित शय्या है और वही साज-सामग्री है। परंतु मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? इस दासीसे कौन-सा अपराध बन गया! अवश्य ही मुझसे अपराध हुआ होगा। हा कृष्ण, हा रमानाथ, प्राणवल्लभ! तुम कहाँ हो?' इतना कहकर राधा फिर मूर्च्छित हो गयीं।

उद्धवने उन्हें होशमें लानेकी चेष्टा की। सखियोंने बहुत-से उपचार किये, पर राधाको चेतना न हुई। उद्धवने कहा—'माता! मैं तुम्हें बड़ा ही शुभ संवाद सुना रहा हूँ। अब तुम्हारे विरहका अन्त हो गया। श्रीकृष्ण तुम्हारे पास आवेंगे। तुम शीघ्र ही उनके दर्शन पाओगी। वे तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये नाना प्रकारकी क्रीडाएँ करेंगे।' 'श्रीकृष्ण आयेंगे' यह सुनकर राधा उठ बैठीं। क्या वे सचमुच आयेंगे? हाँ, अवश्य आयेंगे।

राधाने उद्धवका बड़ा ही सत्कार किया। अनेकों प्रकारके दान देकर, उद्धवको भोजनपान कराकर उन्हें वर दिया कि 'तुम्हें सब सिद्धियाँ मिल जायँ, तुम भगवान्‌के दास बने रहो और तुम्हें उनकी पराभक्ति प्राप्त हो। उद्धव! तुम उनके पार्षद और श्रेष्ठ पार्षद होओ।'*

जब उद्धव विदा होनेके लिये श्रीराधासे अनुमति लेनेको आये, तब श्रीराधाने कहा—'उद्धव! हम अबला हैं। हमारे हृदयका हाल कौन जान सकता है? मुझे भूलना मत, मैं विरहसे कातर हो रही हूँ। मेरे लिये घर और वनमें अब कोई भेद नहीं रह गया है। पशु और मनुष्य एक-से जान पड़ते हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिमें कोई अन्तर नहीं दीख पड़ता। चन्द्रमा-सूर्यका उदय, रात और दिनका होना-जाना मुझे मालूम नहीं है। मुझे अपनी ही सुधि नहीं रहती। श्रीकृष्णके आनेकी बात, उनकी लीला सुनकर, गाकर कुछ क्षणोंके लिये सचेतन हो जाती हूँ। मुझे चारों ओर कृष्ण-ही-कृष्ण दीखते हैं, मैं निरन्तर मुरली-ध्वनि ही सुनती हूँ। मुझे किसीका भय नहीं है। किसीकी लज्जा नहीं है। कुलकी परवा नहीं है। मैं उन्हींको जानती हूँ। उन्हींको भजती हूँ। ब्रह्मा, शंकर और विष्णु जिनकी चरणधूलि पानेके लिये उत्सुक रहते हैं, उन्हें पाकर मैं उनसे बिछुड़ गयी। मेरा कितना दुर्भाग्य है, कोई मेरा हृदय चीरकर देख ले। उनके अतिरिक्त इसमें और कुछ नहीं है। उद्धव! क्या अब उनके साथ क्रीड़ा करनेका प्रेम-सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त होगा? क्या अब वृन्दावनके कुंजोंमें अपने हाथोंसे मालती, माधवी, चम्पा और गुलाबके फूलोंकी माला गूँथकर उन्हें नहीं पहनाऊँगी? अब वे वसन्त-ऋतुकी मधुर रजनियाँ, जिनमें राधा और माधव विहरते थे, पुनः न आयेंगी?' राधा पुनः मूर्च्छित हो गयीं।

सखियोंके और उद्धवके जगानेपर राधा पुनः होशमें आयीं और कहने लगीं—'उद्धव! इस शोक-सागरसे मुझे बचाओ। मुझे समझाने-बुझानेसे कोई लाभ नहीं होगा। उनकी बातें याद करके मेरा मन चंचल हो रहा है। विरहिनीकी वेदना कोई विरहिनी ही जान सकती है। सीताको कुछ-

---

* सर्वसिंद्ध हरेर्दास्यं हरिभक्तिं च निश्चलाम्।
पार्षदप्रवरत्वं च पार्षदं च हरेरिति॥

कुछ इसका अनुभव हुआ था। मैं किससे कहूँ, मेरी मानसिक पीड़ाका किसे विश्वास होगा? मेरे-जैसी अभागिनी, मेरे-जैसी दुःखिनी स्त्री न हुई और न होनेकी सम्भावना है। मैं कल्पवृक्षको पाकर भी ठगी गयी। दैवने मुझे ठग लिया! उन्हें देखकर मेरा जीवन सफल हो गया था, मेरा हृदय और आँखें स्निग्ध हो गयी थीं। उनके नामकी मधुर ध्वनि सुनकर मेरे प्राण पुलकित हो उठते हैं। उनकी मधुर स्मृतिसे आत्मा तर हो जाती है। मैंने उनके कर-कमलोंका स्पर्श अनुभव किया है। मैं उनकी छत्रछायामें रही हूँ। मैं क्या पाकर उन्हें भूल सकती हूँ? ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसा कोई ज्ञान नहीं, ऐसा कोई शास्त्र नहीं, ऐसा कोई संत नहीं तथा ऐसा कोई देवता नहीं, जिससे मैं श्रीकृष्णको भूल सकूँ। स्थितिकी गति सम्भव है, परंतु जहाँ बिना मार्गके ही चलना है, उसे गति कैसे कह सकते हैं? यह शून्यकी सेज है।' राधिका रोने लगीं, उद्धव रोने लगे, गोपियाँ रोने लगीं। वहाँके पशु-पक्षी, वृक्ष-लताएँ और जड़-चेतन सब-के-सब रोने लगे। करुणाका, प्रेमका अनन्त समुद्र उमड़ पड़ा!

उद्धव बहुत दिनोंतक व्रजमें रहे थे। वे राधासे अनेकों प्रश्न करते और प्रेमका रहस्यज्ञान प्राप्त करते, ग्वालोंके साथ वनोंमें घूमते, नन्द-यशोदाके साथ श्रीकृष्णलीलाका कीर्तन और श्रवण करते, गौओंके साथ खेलते, वृक्षोंका आलिंगन करते और लताओंको देखते ही रह जाते। उनका रोम-रोम प्रेममय हो गया, वे ग्वाले हो गये। पता नहीं, परंतु पता है भी कि उनका हृदय गोपीभावमय हो गया। वे वन-वनमें गाते हुए विचरने लगे। उनके हृदयसे यह संगीत निकलने लगा—'केवल गोपियोंका जन्म ही सार्थक है। यही वास्तवमें श्रीकृष्णकी अपनी हो सकी हैं। ब्राह्मण होनेसे क्या हुआ, जब श्रीकृष्णमें प्रेम नहीं। बड़े-बड़े मुनि जिसकी लालसा करते रहते हैं, वह इन गोपियोंको प्राप्त हो गया। कहाँ ये वनमें रहनेवाली गाँवकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ श्रीकृष्णमें इनका अनन्त प्रेम! परंतु इससे क्या हुआ; जानें या न जानें, ज्ञान हो या न हो, श्रीकृष्णसे प्रेम होना चाहिये। अनजानमें भी अमृत पी लिया जाय तो लाभ होता ही है। बिना जाने भी श्रीकृष्णसे प्रेम हो जाय तो वे अपनाते ही हैं। देवपत्नियोंको, इन्दिरा, लक्ष्मीको जो प्रसाद नहीं प्राप्त हुआ, वह इन गोपियोंको प्राप्त हुआ है। ये

श्रीकृष्णके शरीरका स्पर्श प्राप्त करके कृतार्थ हो गयी हैं। मैं अब वृन्दावनमें ही रहूँ। मनुष्य न सही, पशु-पक्षी ही सही, वृक्ष ही सही और नहीं तो एक तिनका ही सही। इनके चरणोंकी धूलि तो प्राप्त होगी न! आह! श्रुतियाँ जिनके चरण-चिह्नोंकी खोजमें लगी हैं, ये गोपियाँ उन्हें पाकर, उनसे एक होकर, उनके प्रेममें तन्मय हो गयी हैं। क्यों न हो, स्वजन और आर्यपथका त्याग करके श्रीकृष्णके चरणोंको अपना लेना आसान थोड़े ही है! लक्ष्मी जिनकी अर्चना करती हैं, आप्तकाम आत्माराम जिनका ध्यान करते हैं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमल अपने हृदयपर रखकर इन्होंने हृदयकी जलन शान्त की है। मैं तो इनकी चरणधूलिका भी अधिकारी नहीं हूँ। मैं चरणधूलिकी ही वन्दना करता हूँ! उद्धव उनकी चरणधूलिमें लोटने लगते। दो दिनके लिये आये थे, महीनों बीत गये!

मथुरा जानेके दिन उद्धवके सिरपर हाथ रखकर राधाने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। तुम्हारा सर्वदा कल्याण हो। भगवान्‌से तुम्हें परमज्ञान प्राप्त हो और तुम सर्वदा भगवान्‌के परम प्रेमपात्र रहो*। राधाने आगे कहा—'सर्वश्रेष्ठ वस्तु श्रीकृष्णका प्रेम है। सर्वश्रेष्ठ कर्म उन्हें प्रसन्न करनेवाला कर्म है। सर्वश्रेष्ठ जीवन उन्हें समर्पित जीवन है। उसी व्रत, ज्ञान और तपस्याकी सफलता है जो उनके उद्देश्यसे है। उद्धव! वही परात्पर परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण ही परम सत्य हैं, ज्योतिःस्वरूप हैं, तुम उन्हीं परमानन्दस्वरूप नन्दनन्दनकी सेवा करो। सारे उपदेशोंकी सफलता इसीमें है।' उद्धवको ऐसा अनुभव हुआ, मानो मैंने सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे अपना वस्त्र गलेमें बाँधकर राधाके चरणोंसे लिपट गये। शरीर पुलकित, आँखोंमें आँसू और राधाके वियोगसे कातर होकर जोर-जोरसे रोना! बस, यही उद्धवकी दशा थी, वे वहाँसे जाना ही नहीं चाहते थे। गोपियोंने बहुत समझाया, राधाने श्रीकृष्णके लिये बाँसुरी और बहुत-से उपहार दिये तथा कहा कि 'जाकर तुम यही प्रयत्न करना कि श्रीकृष्ण यहाँ आवें, मैं उन्हें देख सकूँ।' राधाकी अनुमति प्राप्त करके उद्धव नन्दबाबाके पास गये।

---

* शुभं भवतु मार्गस्ते कल्याणमस्तु सन्ततम्।
ज्ञानं लभ हरेः स्थानात् कृष्णस्य सुप्रियो भव॥

नन्दबाबाने, ग्वालबालोंने उद्धवसे कहा—'उद्धव! अब तो तुम जा ही रहे हो। श्रीकृष्णको हमारी याद दिलाना। यह मक्खन, यह दही और ये वस्तुएँ उन्हें देना। यह बलरामको देना, यह उग्रसेनको देना और यह वसुदेवको देना। हम और कुछ नहीं चाहते, केवल यही चाहते हैं कि हमारी वृत्तियाँ श्रीकृष्णके चरण-कमलोंमें लगी रहें। हमारी वाणीसे उन्हींके मंगलमय मधुरतम नामोंका उच्चारण होता रहे और शरीर उन्हींकी सेवामें लगा रहे। हमें मोक्षकी आकांक्षा नहीं, कर्मके अनुसार हमारा शरीर चाहे जहाँ कहीं रहे; हमारे शुभ आचरण और दानका यही फल हो कि श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारा अहैतुक प्रेम बना रहे।'

उद्धव मथुरा लौट आये। जानेके समय वे माथुरोंके वेषमें गये थे और लौटनेके समय ग्वालोंके वेषमें आये। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण! तुम बड़े निष्ठुर हो। तुम्हारी करुणा, तुम्हारी रसिकता सब कहनेभरकी है। मैंने व्रजमें जाकर तुम्हारा निष्ठुर रूप देखा है। जो तुम्हारे आश्रित हैं, जिन्होंने तुम्हें आत्मसमर्पण कर दिया है, उन्हें इस प्रकार कुएँमें डाल रहे हो, भला, यह कौन-सा धर्म है? छोड़ो मथुरा, अब चलो वृन्दावन। वहीं रहो और अपने प्रेमियोंको सुखी करो। औरोंकी संगति छोड़ दो, प्रेमका नाम बदनाम मत करो।' उद्धव श्रीकृष्णके सामने रोने लगे, वृन्दावन चलनेके लिये हठ करने लगे। उनकी हिचकी बँध गयी, वे एक-एक करके सभी बातें कह गये।

श्रीकृष्णकी आँखोंमें भी आँसू आये बिना न रहे। वे प्रेमाविष्ट हो गये, उनकी सुध-बुध जाती रही! उस समय उनका सच्चा स्वरूप प्रकट हो गया और उद्धवने देखा कि श्रीकृष्णका रोम-रोम गोपिकामय है। जब श्रीकृष्ण सावधान हुए तब उन्होंने उद्धवसे कहा—'प्यारे उद्धव! यह सब तो लीला है। हम और गोपियाँ अलग-अलग नहीं हैं। जैसे मुझमें वे हैं, वैसे ही उनमें मैं हूँ। प्रेमियोंके आदर्शके लिये यह संयोग और वियोगकी लीला की जाती है।' उद्धवका समाधान हो गया। उन्होंने सबके भेजे उपहार दे दिये और श्रीकृष्णके पास रहकर वे प्रेमपूर्वक उनकी सेवा करने लगे।

सभी धर्मोंका लक्ष्य प्रेमधर्म है। सभी नीतियोंका उद्देश्य प्रेमनीतिपर पहुँचना है। प्रेम धर्मोंसे परे है, नीतियोंसे परे है, परंतु सब धर्म, सब नीतियाँ प्रेमके अन्तर्भूत हैं। वह धर्म, धर्म नहीं जिसमें प्रेम न हो। वह नीति, नीति नहीं जिसमें प्रेम न हो। प्रेम व्यापक है और धर्म तथा नीति व्याप्य। इनके बिना वह रह सकता है, परंतु उसके बिना ये नहीं रह सकते। सम्पूर्ण नीतियोंका ज्ञान हो परंतु प्रेमनीतिका ज्ञान न हो तो वह ज्ञान किसी कामका नहीं। प्रेमनीति भगवान्‌की नीति है, उनके सब अपने हैं; सबके साथ उनका प्रेम है और जो उनके आश्रित हैं, उनके साथ तो विशेष प्रेम है। आश्रितवत्सलता भगवान्‌की नीति है और यह प्रेमसे भरी हुई है। भगवान्‌के भक्त इस बातको जानते हैं और सर्वदा उसीके अनुकूल व्यवहार करते हैं।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि उद्धव बृहस्पति-नीतिके पूरे विद्वान् थे। यदुवंशी मतभेदके अवसरोंपर उनसे सलाह लिया करते थे परंतु उस समय उद्धव भगवान्‌की नीति अथवा प्रेमनीतिके विद्वान् नहीं थे। अब वे गोपियोंके पास जाकर प्रेम-धर्मकी शिक्षा प्राप्त कर आये थे। भगवान्‌की नीतिका उन्हें पता था। समय-समयपर श्रीकृष्ण अपने मनकी बात स्वयं न कहकर उन्हींसे कहलाया करते थे।

उन दिनों युधिष्ठिरके यहाँ राजसूय यज्ञ होनेवाला था। द्वारकामें भगवान्‌को वहाँका निमन्त्रण मिल चुका था। दूसरी ओर जरासंधके अत्याचारसे त्रस्त और उसके कैदी हजारों राजाओंकी प्रार्थना यह थी कि भगवान् जरासंधको मारकर हमारी रक्षा करें। देवर्षि नारदने आकर भगवान्‌से कहा था कि अब आप शीघ्र ही शिशुपालको मारें। उसके कारण संसारमें बड़ा उत्पात मचा हुआ है। इस अवसरपर अधिकांश यदुवंशियों और बलरामकी यह सम्मति थी कि 'पहले जरासंध और शिशुपालको मारा जाय—यही हमलोगोंका प्रधान कर्तव्य है।' जरासंध और शिशुपालके अत्याचारोंसे सब जले हुए थे। वे कहते थे कि 'युधिष्ठिरका यज्ञ तो हमारे बिना भी पूरा हो सकता है। वहाँ जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।' परंतु भगवान् श्रीकृष्णके मनमें पाण्डवोंका आकर्षण

अधिक था। वे चाहते थे कि युधिष्ठिर, अर्जुन और द्रौपदीका मन न टूटे, मेरी प्रसन्नताके लिये ही वे यज्ञ कर रहे हैं, मैं न रहूँगा तो वे यज्ञ न कर सकेंगे। परंतु भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं ही यह बात नहीं कही, सबके सामने उद्धवको अपनी सम्मति प्रकट करनेके लिये प्रेरित किया।

उद्धवने कहा—'जब अधिकांश लोगोंकी यही सम्मति है कि पहले अत्याचारियोंका नाश करना चाहिये और स्वयं बलराम भी इसी बातका समर्थन करते हैं तो मैं कुछ कहूँ, यह अप्रासंगिक होगा। तथापि भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा है, वे चाहते हैं कि मैं अपना मत सबके सामने रख दूँ तो मुझे अपनी बात कहनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यद्यपि नीतियाँ अनन्त हैं, उनके वर्णन भी अभिन्न रूपोंमें हुए हैं, परंतु बहुत-सी बातोंका सार थोड़ेमें कहा जा सकता है। इसलिये विस्तार न करके कुछ थोड़े-से शब्द ही मैं कहूँगा। बुद्धिमान् लोग थोड़ी-सी बातका भी विस्तार कर लेते हैं। परंतु मुझमें ऐसी योग्यता नहीं कि अपनी बातको बढ़ा-चढ़ाकर कह सकूँ।'

'जो शत्रुओंपर विजय और अपने मित्रोंकी अभिवृद्धि चाहते हैं, उन्हें दो बातोंका आश्रय लेना चाहिये—प्रज्ञा और उत्साह। प्रज्ञाका अर्थ शुद्ध बुद्धि है, और शुद्ध बुद्धि वही है जो अन्तर्मुख है, विश्वकल्याणके लिये जो स्वार्थका त्याग कर सकती है। उत्साहका अर्थ है, अपनी शक्तिको समझकर उसके उचित उपयोगकी इच्छा। यदि ये दोनों प्राप्त हों तो व्यवहारमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं हो सकती। जिनकी बुद्धि सूक्ष्म है, वे बाहर तो थोड़ा-सा ही स्पर्श करते हैं, परंतु भीतर बहुत अधिक घुस जाते हैं; और जिनकी बुद्धि स्थूल है, वे मिट्टीके ढेलेके समान स्पर्श तो बहुत अधिक करते हैं, परंतु भीतर बहुत कम घुसते हैं। जिन्होंने भगवान्का आश्रय नहीं ले रखा है, वे छोटा-सा काम शुरू करते हैं और उसके लिये अत्यधिक व्यग्र हो जाते हैं और जिन्होंने शुद्ध बुद्धि तथा भगवान्का आश्रय प्राप्त कर लिया है, वे बहुत-से काम करके भी निराकुल ही रहते हैं।'

'शुद्ध बुद्धि और उत्साह रहनेपर भी प्रमादको तनिक भी आश्रय नहीं देना चाहिये। प्रमादके कारण सामने आयी हुई वस्तु भी दूर हट जाती है। और सावधान रहा जाय तो अपने सामनेसे वेगसे भागती हुई वस्तु भी पकड़ ली जा सकती है। कब बल प्रकट करना चाहिये और कब क्षमा कर देनी

चाहिये, इस बातको समझना भी आवश्यक है। कोई अपने साथ अत्याचार करता हो, तो उतावला होकर उसका मुकाबिला नहीं करना चाहिये। अपनी शक्ति और सामर्थ्यपर विचार करके अपने मित्रों तथा सहायकोंके संग्रहमें लग जाना चाहिये, वह समय भी आयेगा, जब अत्याचारियोंका नाश हो जायगा। मैं यह नहीं कहता कि केवल भाग्यके आश्रयसे ही रहा जाय परंतु केवल पौरुषके सहारे ही आगमें कूदनेकी सलाह भी मैं नहीं देता।'

'अपनी शक्तिपर विचार कीजिये। दूसरेकी शक्ति देखिये और सोचिये, आप भगवान्‌के कितने निकट हैं और वह भगवान्‌से कितना दूर है। साम, दाम, दण्ड, भेद—इन उपायोंको बरतिये भी और भगवान्‌का भरोसा भी रखिये। स्वयं तैयारी भी कीजिये और ऐसे मित्र भी बनाइये जो आपके सरीखे उद्देश्यवाले हों। ऐसा करनेसे आपको बड़ा प्रोत्साहन मिलेगा और अनायास ही आपका उद्देश्य पूरा हो जायगा। किससे कब संधि करनी चाहिये और किससे कब विग्रह, कब काम-क्रोधादि शत्रुओंको बिलकुल नष्ट किया जा सकता है और कब उनके एक-एक अंग धीरे-धीरे क्षीण किये जा सकते हैं, इस बातको पहले खूब समझ लेना चाहिये।'

'भगवान् श्रीकृष्ण आश्रितवत्सल हैं। ये भक्तोंके सामने दूसरोंकी ओर दृष्टि नहीं डालते। युधिष्ठिरके यज्ञमें इनका जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि वहाँ गये बिना ही शिशुपाल अथवा सिर्फ जरासंधपर चढ़ाई कर दी जाय तो परिस्थिति बड़ी भयंकर हो जायगी। याद रहे, जरासंध या शिशुपालको ही मारना नहीं है। जैसे राजयक्ष्मा रोगोंका समूह है, वैसे ही वे दोनों दुष्ट दैत्यों और राजाओंके समूह हैं। उनमें लड़ाई छेड़ देनेपर उनका ताँता टूटना कठिन हो जायगा और हम पाण्डवोंकी सहायतासे भी वंचित रह जायँगे। सम्भव है, युधिष्ठिरके यज्ञमें भी विघ्न पड़ जाय और वे श्रीकृष्णके न जानेसे यज्ञ ही न करें। फिर पाण्डव हमलोगोंके बारेमें क्या सोचेंगे? जरासंध या शिशुपालने तो हमपर चढ़ाई की नहीं है कि आत्मरक्षाके लिये हम युधिष्ठिरके यज्ञमें न जायँ। हमें उनपर चढ़ाई करनी है और ऐसे अवसरपर अपने मित्र तथा सम्बन्धियोंके उत्सवमें भाग न लेकर किसीपर चढ़ाई कर देना मुझे तो नीतिसंगत नहीं जान पड़ता।'

'परंतु प्रश्न इतना ही नहीं है। शिशुपालकी बात तो पीछे देखी जायगी।

जरासंधके कैदी राजाओंकी प्रार्थना उपेक्षा करनेयोग्य नहीं है। दीनोंकी, शरणागतोंकी रक्षा करना सभीका एकान्त कर्तव्य है और भगवान् श्रीकृष्णने तो इसका व्रत ले रखा है। इसलिये यज्ञके पूर्व और शिशुपाल-वधके पूर्व उन राजाओंको छुड़ाना चाहिये। परंतु यह काम हमारी ओरसे नहीं होना चाहिये। इसके लिये सामूहिक युद्ध छेड़नेका अभी अवसर भी नहीं है। यह काम पाण्डवोंसे मिलकर उनकी सहायता और शक्ति प्राप्त करके उपायके द्वारा ही करना चाहिये। यह काम हस्तिनापुर जानेपर श्रीकृष्ण कर लेंगे। यज्ञके पूर्व राजाओंको छुड़ा लिया जाय, इससे हमारी और युधिष्ठिरकी शक्ति बढ़ जायगी, इसके पश्चात् शिशुपालको यज्ञमें निमन्त्रित किया जाय और उसका रुख देखकर, राजाओंकी सम्मति देखकर शिशुपालके दोषोंके प्रकट हो जानेपर जैसा मौका आवे, वैसा किया जाय। अन्ततः मेरी सम्मति तो यही है कि श्रीकृष्ण और उनके साथ हम सब पहले पाण्डवोंके यज्ञमें चलें, उसके बाद सब व्यवस्था हो जायगी।'

सबने एक स्वरसे उद्धवके विचारोंका समर्थन किया। बलरामने भी कहा—'उद्धवके विचार ही ठीक हैं। ये भगवान्‌की सम्मति जानते हैं, उनकी इच्छाके अनुसार ही कहते हैं और भगवान् अपने भक्तोंको छोड़कर अभक्तोंकी ओर जा नहीं सकते। इसलिये यही बात ठीक रही।'

सब लोगोंने युधिष्ठिरके यज्ञकी यात्रा की। भगवान्‌ने भीमके द्वारा जरासंधको मरवा डाला और हजारों राजा कैदखानेसे मुक्त होकर युधिष्ठिरकी सहायता करनेके लिये यज्ञमें आये। सौ अपराधोंतक क्षमा करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने सबके सामने ही चक्रद्वारा शिशुपालका उद्धार किया और धर्मराजका यज्ञ सकुशल सम्पन्न हुआ। उद्धवकी नीतिमत्ताका यश चारों ओर फैल गया। महाभारतके कई स्थानोंमें उद्धवकी नीतिकी प्रशंसा है। धृतराष्ट्रने विदुरकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि जैसे यदुवंशियोंमें नीतिके सर्वश्रेष्ठ और यशस्वी विद्वान् उद्धव हैं, वैसे ही कुरुकुलमें तुम हो। जिसे भगवान्‌की सन्निधि, उनकी कृपा और उनका प्रेम प्राप्त है, उसके नीतिमान् होनेमें क्या संदेह है? भगवान्‌की आज्ञाका पालन करते हुए उद्धव द्वारकामें निवास करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्ण जैसे प्रेमस्वरूप हैं, वैसे ही ज्ञानस्वरूप भी हैं। वास्तवमें प्रेम और ज्ञानका भेद तो अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है। भगवान्‌में दोनोंका समन्वय है, या यों भी कह सकते हैं कि प्रेम ही ज्ञान है और ज्ञान ही प्रेम है। प्रेमीसे कोई रहस्य अज्ञात नहीं रह सकता और रहस्यका ज्ञान रखनेवाला प्रेम किये बिना रह नहीं सकता। जो ज्ञान प्रेमका विरोधी है, वह एकांगी है और जो प्रेम ज्ञानका विरोधी है, वह भी एकांगी है। भगवान् पूर्ण हैं, ज्ञान और प्रेम दोनों ही उनके स्वरूप हैं। जिन्हें साधनभक्ति प्राप्त हुई, प्रेमलक्षणाभक्तिका अनुभव हुआ, उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही पराभक्ति अथवा परम ज्ञानका दान करते हैं। उद्धवको परम ज्ञान दान करनेका अब अवसर आया।

ब्रह्मा, शंकर और इन्द्रने आकर भगवान्‌से प्रार्थना की कि अब हमारी प्रार्थना पूर्ण हो गयी, आप चाहें तो स्वधाम गमन करें। यदुकुलके उपसंहारकी व्यवस्था हो गयी। अब भगवान् अपने धाम जानेहीवाले थे। उन्होंने सोचा—'जब मैं इस लोकसे अन्तर्धान हो जाऊँगा तो मुझमें रहनेवाला ज्ञान कहाँ रहेगा? इसके अधिकारी तो शुद्ध अन्तःकरणवालोंमें श्रेष्ठ केवल उद्धव ही हैं। उद्धव मुझसे तनिक भी कम नहीं हैं; क्योंकि वे गुणोंसे कभी प्रभावित नहीं हुए। वे समर्थ हैं, इसलिये संसारमें मेरे ज्ञानका विस्तार करते हुए वे यहीं रहें।'* श्रीकृष्णके संकल्पका ही तो विलम्ब था, उनके मनमें यह बात आते ही उद्धवने आकर श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया।

उद्धवने कहा—'भगवन्! अब आप यह लोक छोड़ना चाहते हैं। प्रभो! मैं एक पलके लिये भी आपके चरण-कमलोंका परित्याग नहीं कर सकता। मुझे अपने साथ ही अपने धाम ले चलें। श्रीकृष्ण! आपके मंगलमय, मधुमय चरित्रका जो श्रवण कर लेते हैं, उनके मनसे दूसरी

---

* अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम्।
अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः॥
नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः।
अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु॥

वस्तुओंकी इच्छा नष्ट हो जाती है। मैं तो बचपनसे ही आपके साथ रहता आया हूँ। उठते-बैठते, चलते-फिरते, नहाते-धोते, खेलते-खाते आपके साथ रहा हूँ। आपके प्रसादका सेवन करते हुए ही अबतक मैंने अपना जीवन व्यतीत किया है। आप मेरे सुहृद् हैं, आत्मा हैं, आपको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आपके ब्रह्मधाममें जा सकते हैं। मैं तो कर्मोंके पचड़ेमें भटक रहा हूँ, मुझे एकमात्र आधार है आपकी लीलाकी स्मृति। आपके चरित्र और आपकी वाणीका मैं स्मरण करूँगा, कीर्तन करूँगा। आपकी ललित गति, मन्द मुसकान, चारु चितवन और विनोदसे भरी क्रीड़ाओंका स्मरण करके मस्त होता रहूँगा। मुझे और किसी बातका आश्रय नहीं, मुझपर आप कृपा कीजिये।'

भगवान् श्रीकृष्णने अपने एकान्त प्रेमी उद्धवसे कहा—'उद्धव! वास्तवमें यही बात है। अब यह द्वारका समुद्रमें डूब जायगी। संसारमें अधार्मिक रुचिके लोग बढ़ेंगे। तुम अब सबका स्नेह छोड़ दो। केवल मुझमें मन लगाकर समदृष्टिसम्पन्न होकर पृथ्वीमें विचरण करो। उद्धव! प्राकृत मन और इन्द्रियोंसे जो कुछ गृहीत होता है, वह सब विनाशी है, मनोमय है और मायामय है। जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, उसीकी बुद्धिमें नाना वस्तुएँ दीखती हैं। वही 'यह गुण है, यह दोष है' ऐसा सोचता है और उसे कर्म-अकर्म-विकर्मके चक्करमें पड़ना ही पड़ता है। इसलिये तुम एकाग्रचित्तसे इस जगत्को आत्मामें देखो और आत्माको मुझमें देखो। प्रकृति और प्राकृत विकारोंसे उत्पन्न कोई भी विघ्न तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकेगा, तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकेगा, तुम अपने-आपमें संतुष्ट हो जाओ। गुण-दोष दोनोंसे ही ऊपर उठ जाओ। अपने ज्ञानस्वरूपमें स्थित होकर शान्त हो जाओ और सबके सुहृद् बन जाओ। सर्वत्र मेरा ही दर्शन करो, एक क्षणके लिये भी उससे च्युत मत होओ।'

श्रीकृष्णके उपदेश सुनकर उद्धवने बहुत-से प्रश्न किये और श्रीकृष्णने उनका विस्तारसे उत्तर दिया। श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धका अधिकांश भाग भगवान्के उपदेशोंसे ही परिपूर्ण है। इस छोटे-से स्थानमें उनकी पूर्णतः चर्चा नहीं की जा सकती। संक्षेपमें भगवान्के कुछ वचन ही उद्धृत किये जाते हैं।

भगवान्‌ने कहा—'अपनी भलाई अपने-आप ही करनी चाहिये। कल्याणके मार्गमें दूसरे कुछ सहायता कर सकते हैं। परंतु चलना तो अपने-आप ही होगा। यों तो मुझे सम्पूर्ण जीव प्रिय हैं परंतु मनुष्ययोनि अधिक प्रिय है। इसीमें अपने-आपका अनुसंधान किया जा सकता है, मेरी प्राप्ति की जा सकती है और अभिलषित स्थानकी उपलब्धि की जा सकती है। चाहो तो तुम प्रत्येक वस्तुसे सहायता ले सकते हो। पृथ्वी तुम्हें क्षमाकी शिक्षा दे सकती है, आकाश असंगताकी शिक्षा दे सकता है, सूर्य समदृष्टिकी शिक्षा दे सकते हैं, यहाँतक कि पशु-पक्षी और तिनकोंसे भी उपदेश ग्रहण किये जा सकते हैं। दत्तात्रेयने चौबीस गुरु बनाये थे। अर्थात् चौबीसों दत्तोंसे उन्होंने शिक्षा ग्रहण की थी।'

'संसारके सभी विषय विनाशकी ओर बढ़ रहे हैं। ये राजमहल, ये स्वर्णमुद्राएँ, ये हाथी-घोड़े किसी काम नहीं आयेंगे। ये सगे-सम्बन्धी ऐन मौकेपर छोड़ देंगे। इनकी ओरसे आँखें बंद कर लो। अन्तर्मुख होते चलो। वहाँतक अन्तर्मुख हो जाओ, जहाँ केवल मैं-ही-मैं रहता हूँ। तुम स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरसे पृथक् हो। इन शरीरोंको ही आत्मा माननेके कारण तुम्हें आवागमनके चक्करमें भटकना पड़ रहा है। छोड़ दो इन्हें, स्वर्गकी भी परवा न करो, ब्रह्मलोककी भी इच्छा न करो। उनकी आयु बहुत थोड़ी है, वे कर्मपरतन्त्र हैं, तुम नित्यमुक्त नित्य-स्वतन्त्र आत्मा हो।'

'ये बद्ध और मुक्त गुणोंकी दृष्टिसे ही हैं, वास्तवमें नहीं। और ये गुण मायामूलक हैं, इसलिये मुझमें न बन्धन है और न मुक्ति। जैसे स्वप्नमें अपनेको बद्ध मानकर कोई मुक्तिके लिये प्रयत्न करता हो तो वह तबतक मुक्त नहीं हो सकता, जबतक उसका स्वप्न न टूट जाय। वैसे ही जो मायामें पड़े हुए हैं, उनकी दशा है। ज्ञानके द्वारा इस अज्ञानके बन्धनको काट डालो। प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिका संकल्प ही मत करो। मत किसीकी स्तुति करो, मत किसीकी निन्दा करो। तुम अपने कर्मके स्वामी हो, दूसरोंके कर्मके नहीं। कोई तुम्हारी निन्दा करे या स्तुति, समान रहो।'

'बहुत बड़ी विद्या प्राप्त हो परंतु भगवत्तत्त्वका बोध न हो तो वह किसी कामकी नहीं है। वही सच्ची विद्या है, जिसमें मेरे पवित्र गुण और लीलाओंका वर्णन रहता है। विद्या और बुद्धिका उपयोग है—आत्माको

जाननेमें। आत्माके ज्ञानका वास्तविक रूप यह है कि नानात्वकी भ्रान्ति मिट जाय। मनको अर्पित कर दो उसीमें, बुद्धिको लगा दो मुझमें। तुम मेरे हो, मुझमें ही रहोगे। यदि तुम ऐसा न कर सको तो सत्संग करो; संत मेरा जो रूप बतलावें, उसका ध्यान करो, चिन्तन करो। साकार, निराकार, विष्णु, राम सब मेरे ही रूप हैं। किसीका ध्यान करते हुए शान्ति, दान्ति, तितिक्षा आदि गुणोंको अपनाओ। मेरी कथा सुनो, मेरे व्रत करो, मेरे लिये नियम धारण करो और जो कुछ करो, मुझे निवेदन कर दो!'

'मुझे सुगमतासे प्राप्त करनेका साधन सत्संग है। योग, सांख्य, धर्म आदि कठिन हैं। सत्संग सब कर सकते हैं। शूद्र, स्त्रियाँ, अन्त्यज और बहुत-से दैत्य, दानव, पशु-पक्षी सत्संगके द्वारा मुझे प्राप्त कर चुके हैं। सत्संगके द्वारा केवल मुझमें मन लगाओ। उद्धव! तुम्हें तो गोपियोंकी याद है न! वे कितनी तन्मयतासे मेरा चिन्तन करती थीं! छोड़ दो तुम विधि-विधानोंके आश्रयको। प्रवृत्ति, निवृत्ति, श्रुत और श्रोतव्य सबसे न्यारे हो जाओ। आओ, आओ तुम केवल मेरी शरणमें आओ। तुम्हें निर्भय पद प्राप्त होगा।'

'तुम यह मत सोचो कि गुणोंसे बना हुआ चित्त गुणोंको कैसे छोड़ सकेगा? गुण चित्तसे कैसे निकल सकेंगे!' चित्त और गुण दोनों अन्योन्याश्रित हैं, परंतु मेरा स्वरूप दोनोंसे पृथक् है। जो मुझे ग्रहण कर लेता है, उससे चित्त और गुण दोनों ही छूट जाते हैं। यह बन्धन तो उनके साथ एक हो जानेके कारण है। आत्मदृष्टिसे उनकी सत्ता नहीं है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये तीनों अवस्थाएँ मनकी हैं। इन्हें देखनेवाला आत्मा है। मेरी ही मायासे मुझमें ये बनी हुई हैं। ऐसा सोचकर ज्ञानकी तलवारसे इन्हें काट डालो। केवल मेरा भजन करो। यह सब एक है, केवल आत्मा है। जो कुछ आत्माके अतिरिक्त दीखता है, वह मायिक है। उसकी ओरसे दृष्टि हटाकर मस्त हो जाओ।'

'मस्त हो जानेपर—स्वरूपस्थिति हो जानेपर इस विनाशी शरीरके दर्शन नहीं होते। यह रहे या न रहे, इसकी ओर मस्तकी दृष्टि ही नहीं जाती। जबतक प्रारब्ध रहता है, तबतक शरीरको जिलाये रखता है, उसके न रहनेपर यह गिर जाता है। तत्त्वज्ञानी संसार, प्रारब्ध अथवा शरीरपर दृष्टि

नहीं डालता। अदृष्टि ही उसकी दृष्टि है। यही परम तत्त्व है, इसमें स्थित होना ही सम्पूर्ण साधनोंकी पूर्णता है।'

'इस जीवनका लक्ष्य क्या है, इसके सम्बन्धमें बहुत-से लोग अपने-अपने मनकी बात कहते हैं, किंतु मनमानी बातका कोई मूल्य नहीं है। उनकी दृष्टि किसी-न-किसी सांसारिक बातपर लगी है, वे उसे पाते भी हैं परंतु कभी-न-कभी उससे च्युत होना ही पड़ता है। पर जो सबसे निरपेक्ष हो गया है, जिसने मुझे आत्मसमर्पण कर दिया है, वह तो मेरा स्वरूप ही है। उसे जो सुख मिलता है, वह औरोंको भला कैसे मिल सकता है? मैं अपने भक्तोंसे जितना प्रेम करता हूँ, उतना औरोंकी तो क्या बात, अपने-आपसे भी नहीं करता। जो मुझे चाहते हैं, वे मोक्ष भी नहीं चाहते।'

'मेरे भक्तके सामने विषयोंका प्रलोभन आ सकता है। परंतु जैसे पामर लोग विषयोंके अधीन हो जाते हैं, वैसे वह नहीं हो सकता। उसे मेरा आश्रय है, मैं सब विघ्नोंको नष्ट कर देता हूँ। सम्पूर्ण साधनोंमें मेरी भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ है। मैं केवल भक्तिसे ही प्राप्त होता हूँ। मेरी भक्ति नीच-से-नीचको भी पवित्र कर देती है। जिन्हें मेरी भक्ति प्राप्त नहीं है, वे चाहे जितना धर्माचरण करें, सच्ची पवित्रता उन्हें नहीं मिल सकती। जिसे मेरी लीला सुनकर रोमांच नहीं हो आता, चित्त द्रवित नहीं हो जाता, आँखोंसे आँसू नहीं गिरने लगते, जो प्रेमसे गद्‌गद नहीं हो जाता, उसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो सकता। जो मेरे प्रेममें पागल होकर, संकोच छोड़कर गाता है, नाचता है, वह सारे संसारको पवित्र करता है। उसकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है। विषयोंका ध्यान करनेवाला नष्ट हो जाता है, मेरा ध्यान करनेवाला मुझे पा लेता है। इसलिये छोड़ दो—विषय और विषयी लोगोंका संग। मोड़ दो—अपने चित्तको मेरी ओर। बस, कल्याण-ही-कल्याण है।'

'आसन करो, प्राणायाम करो, प्रणवका जप करो और श्वासके साथ मेरे नामोंको जोड़ दो। मेरी किसी भी मूर्तिका ध्यान करो। स्मरण रहे, बहुत-सी सिद्धियाँ आयेंगी, परंतु वे सब वांछनीय नहीं हैं। उनकी ओर आँख उठाकर भी मत देखो। संसारमें बड़ी कही जानेवाली जितनी वस्तुएँ

हैं, वे सब मेरे ही स्वरूप हैं। उनमें उन्हें मत देखो, मुझे देखो। उद्धव! मेरी विभूतियोंका विस्तार अनन्त है। चाहे जहाँ, मुझे देख सकते हो!'

'ब्रह्मचारी हो तो ब्रह्मचर्यका पालन करे। गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी हो तो अपने-अपने शास्त्रोक्त धर्मोंका आचरण करे। शास्त्र मेरी आज्ञा है। शास्त्रोंकी आज्ञाका पालन मेरी आज्ञाका पालन है। याद रहे, वे मेरी आज्ञा हैं। उनके आचरणके समय भी मुझे नहीं भूलना चाहिये। मेरा स्मरण ही उनका प्राण है।'

'उद्धव! यह मनुष्य-शरीर बड़ा ही दुर्लभ है, सो सुलभ हो गया है। यह संसार-सागरसे पार जानेमें जहाजका काम करता है, गुरु इसके कर्णधार हैं, मैं अनुकूल वायु हूँ। ऐसी अवस्थामें जो पार जानेकी चेष्टा नहीं करता, वह जान-बूझकर आत्महत्या करता है। क्षण-क्षण आयु छीज रही है। पल-पल मृत्यु निकट आ रही है। सँभल जाओ, इस शरीरसे पूरा लाभ उठाओ। अपने कर्तव्यका पालन करो, बुरे कर्मोंका त्याग करो। यदि पहले मानसिक दोषोंके त्यागमें असमर्थ होते हो तो घबड़ाओ मत! शारीरिक पापोंको छोड़कर मेरा भजन करते चलो। भजनसे हृदयकी सब कामनाएँ नष्ट हो जायँगी, हृदयकी गाँठ खुल जायगी, सारे संशय नष्ट हो जायँगे और तुम कर्मोंसे ऊपर उठ जाओगे। कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान और सब उपायोंसे जो फल प्राप्त होता है, वह मेरी भक्तिसे प्राप्त होता है। परंतु फलकी क्या अपेक्षा है। मेरे भक्त तो निरपेक्ष होते हैं, वे मोक्ष भी नहीं चाहते। निरपेक्षता ही परम कल्याण है। निरपेक्षता ही मेरी सच्ची भक्ति है।'

'संसारमें कोई किसीको सुख या दुःख नहीं देता। सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार प्रकृतिके प्रवाहमें बहे चले जा रहे हैं। किसीको सुखका निमित्त मानकर उसके साथ सटो मत। जो कर्म अशास्त्रीय होते हैं, प्रमाद और आलस्यसे होते हैं, वे तामसिक हैं। जो आसक्तिसे होते हैं, वे राजसिक हैं। जो बुद्धिसे विचार करके शास्त्रीय कर्म होते हैं वे सात्त्विक हैं और जो मेरे आश्रयसे होते हैं वे निर्गुण हैं। विषयभोगोंसे कामनाओंकी तृप्ति कभी नहीं हो सकती। इसके एक नहीं, अनेकों दृष्टान्त हैं। साधारण प्रजासे लेकर सम्राट्तक कामनाओंकी आगमें झुलस रहे हैं। तुमने तो

पुरूरवाकी कथा सुनी ही है। छोड़ दो कामनाओंको और स्थित हो जाओ आत्मामें, परमात्मामें।'

'सब आत्मा ही है। सब परमात्मा ही है। दूसरोंपर दृष्टि मत डालो। केवल मेरी लीला देखो, संसार कैसे है यह शंका मत करो। कामनाएँ ही संसार हैं। उन्हींका संसरण है, उन्हींका आवागमन है। महात्माओंका यही निश्चय है। वास्तवमें मेरा यही ज्ञान है कि केवल मैं-ही-मैं हूँ। जो संसार पहले नहीं था, पीछे नहीं रहेगा, वह बीचमें कहाँसे आ सकता है? केवल आत्मतत्त्वमें दूसरेकी कल्पना ही तो मोह है। मेरे प्यारे उद्धव! तुम इससे ऊपर उठो। सर्वत्र मुझे देखो, सर्वत्र भगवद्भाव करो। सबसे बड़ी बुद्धि यही है, सबसे बड़ी चतुरता यही है कि असत्य संसारके द्वारा सत्य परमात्माको प्राप्त करे। इस मृत्युशील शरीरके द्वारा अमृतत्वकी उपलब्धि करो। मैंने तुम्हें परम ज्ञानका उपदेश किया, जो इसे जान लेते हैं उनके संदेह नष्ट हो जाते हैं और वे मुझे पा लेते हैं।'

उद्धव अंजलि बाँधकर, गद्गद कण्ठसे, आँखोंसे आँसू बहाते हुए भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े। उनसे कुछ बोला नहीं गया। सावधान होकर उन्होंने कहा—'भगवन्! मेरा मोहान्धकार दूर हो गया, आपने मुझे ज्ञानकी ज्योति दे दी, आपकी मुझपर अनन्त कृपा है। भला, मैं आपके चरणोंको कैसे छोड़ सकता हूँ? अब मेरा स्नेहबन्धन टूट गया, आपके चरणोंकी भक्ति बनी रहे, यही मैं चाहता हूँ।'

भगवान्‌ने कहा—'उद्धव! अब तुम यहाँसे बदरीवन जाओ। मेरे चरणोंके जल गंगामें स्नान करना। अलकनन्दाके दर्शनसे पवित्रतम हो जाना। प्राकृतिक द्वन्द्वोंको सहन करना और वनके फल-मूलोंको खाना, सर्वदा शान्त रहना, इन्द्रियोंको संयत रखना और ज्ञान-विज्ञानसे कभी पृथक् न होना। मैंने जो कुछ तुम्हें बतलाया है, एकान्तमें उसका अनुभव करते रहना। अपनी वाणी और मन मुझमें लगाकर मेरे बतलाये हुए धर्ममें लगे रहना।'

उद्धवका अपना व्यक्तित्व तो कुछ था ही नहीं, वे भगवान्‌की आज्ञासे चलनेवाले यन्त्र थे। जब भगवान् उन्हें रखना चाहते थे तो वे वियोगका दु:ख सहकर भी संसारमें क्यों न रहते? गोपियोंसे उन्होंने यही तो सीखा

था कि भगवान्‌के विरहमें कैसे रहना चाहिये? उन्होंने भगवान्‌की प्रदक्षिणा की, अपने आँसुओंसे उनके चरण धोये और बार-बार नमस्कार करके उनके विरहसे विकल होते हुए बदरिकाश्रमकी यात्रा की। भगवान् श्रीकृष्ण यथावसर अन्तर्धान हो गये।

जब उद्धव यमुनातटपर पहुँचे, तब उन्हें धर्मके अवतार महात्मा विदुरके दर्शन हुए। विदुरने श्रीकृष्ण और यदुवंशियोंका कुशल-प्रश्न पूछा। उनके प्रश्न सुनकर उद्धव भगवान्‌की स्मृतिमें तल्लीन हो गये। जो बचपनसे आजतक श्रीकृष्णके साथ रहे, वे ही आज श्रीकृष्णके निजधाम-गमनका समाचार सुनावें, यह उनके लिये कितनी कठोर बात थी? वे बहुत देरतक श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही तल्लीन रहे। उन्हें मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए, वे उनके लीलालोकमें चले गये। उनका शरीर पुलकित हो गया, आँखोंसे आँसू बहने लगे, उनके शरीरसे प्रेमकी धारा फूटकर बहने लगी। वे धीरे-धीरे पुनः मनुष्यलोकमें आये, अपनी आँखें पोंछकर मुसकराते हुए विदुरसे बोले—

'अब द्वारकामें कुछ नहीं है। जब श्रीकृष्ण ही नहीं रहे तो मैं कुशल किसका बताऊँ? विदुर! यह दुनिया बड़ी अभागिनी है और यदुवंशी तो अभागे हैं ही। वे श्रीकृष्णके साथ रहकर भी उन्हें नहीं पहचान सके। उनके इशारेपर चलनेवाले, उनके साथ खेलने, खाने, सोनेवाले यदुवंशी केवल उन्हें यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ ही समझते रहे। भगवान्‌की माया ही ऐसी है। वे जिनपर अपनेको प्रकट करना चाहते हैं, वे ही उन्हें पहचान सकते हैं। उन्होंने अतृप्त नेत्रोंको तृप्त किया, मरते हुए जीवोंको जीवनदान दिया, सबके लिये कल्याणका मार्ग खोल दिया, जो उनके पास गये, उनका उद्धार किया। कहाँतक कहें, जो वैरसे उनके पास गये, उन्हें भी भगवान्‌ने उत्तम गति दी।'

'पूतनाको तो तुम जानते हो न, कितनी घोर राक्षसी थी, बच्चोंको खा जाती थी, स्तनोंमें कालकूट विष लगाकर वह भगवान्‌के पास गयी, वह भगवान्‌को मारना चाहती थी; परंतु भगवान्‌ने उसे भी माताकी गति दी। ऐसे दयालु प्रभुको छोड़कर हम और किसकी शरण ग्रहण करें?' उद्धव भगवान्‌की लीलाएँ सुनाने लगे। जन्मसे लेकर अपने उपदेश

पानेतककी कथा कह सुनायी। विदुरने भगवान्‌के द्वारा प्राप्त ज्ञानको सुननेकी इच्छा प्रकट की। उद्धवने भगवान्‌का आदेश बताकर उन्हें मैत्रेय ऋषिके पास भेज दिया और स्वयं बदरीनारायण जाकर भगवान्‌का चिन्तन करने लगे।

उद्धव भगवान्‌के नित्य पार्षद हैं, वे भी भगवान्‌की ही भाँति नित्य सिद्ध हैं। वे अब भी हैं और अधिकारियोंके सामने प्रकट होकर समय-समयपर भगवान्‌के तत्त्वज्ञानका उपदेश करते हैं। जब भगवान्‌की इच्छा होती है, तब वे उन्हें अपने पास बुला लेते हैं और जब चाहते हैं, तब संसारमें भेज देते हैं। पुराणोंमें ऐसी अनेक कथाएँ आती हैं, जब भगवान्‌के दर्शनके समय भक्तोंको उद्धवके भी दर्शन हुए हैं। भगवान् और उनके भक्त उद्धवकी कृपासे हमारे हृदयमें भगवत्प्रेमका संचार हो, यही प्रार्थनीय है।

'बोलो भक्त और भगवान्‌की जय!'

॥ श्रीहरिः ॥

उद्धवको 'वासुदेवः सर्वम्'का उपदेश

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम्।
ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः॥ १॥

शुद्धान्तःकरण पुरुष आकाशके समान बाहर और भीतर परिपूर्ण एवं आवरणशून्य मुझ परमात्माको ही समस्त प्राणियों और अपने हृदयमें स्थित देखे॥ १॥

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते।
सभाजयन् मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः॥ २॥
ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके।
अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डितो मतः॥ ३॥

निर्मलबुद्धि उद्धवजी! जो साधक केवल इस ज्ञानदृष्टिका आश्रय लेकर सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थोंमें मेरा दर्शन करता है और उन्हें मेरा ही रूप मानकर सत्कार करता है तथा ब्राह्मण और चाण्डाल, चोर और ब्राह्मणभक्त, सूर्य और चिनगारी तथा कृपालु और क्रूरमें समान दृष्टि रखता है, उसे ही सच्चा ज्ञानी समझना चाहिये॥ २-३॥

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात्।
स्पर्धासूयातिरस्काराः साहङ्कारा वियन्ति हि॥ ४॥

जब निरन्तर सभी नर-नारियोंमें मेरी ही भावना की जाती है, तब थोड़े ही दिनोंमें साधकके चित्तसे स्पर्द्धा (होड़), ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो जाते हैं॥ ४॥

विसृज्य स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्।
प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्॥ ५॥

अपने ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवा न करे;

'मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है' ऐसी देहदृष्टिको और लोक-लज्जाको छोड़ दे और कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधेको भी पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग दण्डवत्-प्रणाम करे॥ ५॥

यावत् सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते।
तावदेवमुपासीत वाङ्मनःकायवृत्तिभिः॥ ६॥

जबतक समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना—भगवद्भावना न होने लगे, तबतक इस प्रकारसे मन, वाणी और शरीरके सभी संकल्पों और कर्मोंद्वारा मेरी उपासना करता रहे॥ ६॥

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययाऽऽत्ममनीषया।
परिपश्यन्नुपरमेत् सर्वतो मुक्तसंशयः॥ ७॥

उद्धवजी! जब इस प्रकार सर्वत्र आत्मबुद्धि—ब्रह्मबुद्धिका अभ्यास किया जाता है, तब थोड़े ही दिनोंमें उसे ज्ञान होकर सब कुछ ब्रह्मस्वरूप दीखने लगता है। ऐसी दृष्टि हो जानेपर सारे संशय-सन्देह अपने-आप निवृत्त हो जाते हैं और वह सब कहीं मेरा साक्षात्कार करके संसारदृष्टिसे उपराम हो जाता है॥ ७॥

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम।
मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः॥ ८॥

मेरी प्राप्तिके जितने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें मन, वाणी और शरीरकी समस्त वृत्तियोंसे मेरी ही भावना की जाय॥ ८॥

न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि।
मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः॥ ९॥

उद्धवजी! यही मेरा अपना भागवतधर्म है; इसको एक बार आरम्भ कर देनेके बाद फिर किसी प्रकारकी विघ्न-बाधासे इसमें रत्तीभर भी अन्तर नहीं पड़ता; क्योंकि यह धर्म निष्काम है और स्वयं मैंने ही इसे निर्गुण होनेके कारण सर्वोत्तम निश्चय किया है॥ ९॥

यो यो मयि परे धर्मः कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।
तदायासो निरर्थः स्याद् भयादेरिव सत्तम॥ १०॥

भागवतधर्ममें किसी प्रकारकी त्रुटि पड़नी तो दूर रही—यदि इस धर्मका साधक भय-शोक आदिके अवसरपर होनेवाली भावना और रोने-पीटने, भागने-जैसा निरर्थक कर्म भी निष्कामभावसे मुझे समर्पित कर दे तो वे भी मेरी प्रसन्नताके कारण धर्म बन जाते हैं॥ १०॥

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥ ११॥

विवेकियोंके विवेक और चतुरोंकी चतुराईकी पराकाष्ठा इसीमें है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीरके द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य तत्त्वको प्राप्त कर लें॥ ११॥